पंचम अध्याय

समकालीन दलित कविता में निरुपित विभिन्न समस्याओं का अनुशीलन

◈ प्रास्ताविक

दलित जीवन एक संघर्ष है , और इसीलिए इस दलित एवं उत्पीड़ित जीवन को केंद्र में रखकर रचा गया साहित्य निर्विवाद रूप से एक संघर्षगाथा ही बना रहेगा । दलितों को कदम-कदम पर अपने वजूद के लिए जूझना पड़ता है , टूटना पड़ता है , सँभलना पड़ता है । इस संघर्ष के कारण ही वह जीवन के प्रत्येक मोड़ पर नाना प्रकार की समस्याओं से दो-दो हाथ करता रहता है । यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भारत में धर्म-शास्त्र और परंपराओं के नाम पर दलित जातिओं का सामाजिक , राजनैतिक , आर्थिक और नैतिक शोषण हुआ है । उसके सामने नकारों का एक पूरा अम्बार खड़ा कर दिया गया है । दलित देववाणी पढ़ तो क्या सुन भी नहीं सकते , मंदिर नहीं जा सकते , सार्वजनिक स्थानों पर नहीं जा सकते , शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते , अपना व्यवसाय नहीं चुन सकते , सार्वजनिक जलागारों से पानी नहीं भर सकते , अच्छे नये वस्त्र नहीं पहन सकते , सोना-चाँदी के गहने नहीं पहन सकते , संपत्ति अर्जित नहीं कर सकते , त्रिवर्णों के सामने शिकायत नहीं कर सकते , उनके खिलाफ़ गवाही नहीं दे सकते , उनके खिलाफ़ बोल नहीं सकते आदि... आदि... आदि... सिर्फ़ और सिर्फ़ निर्योग्यताएँ । दक्षिण भारत के कुछ नगरों की स्थिति तो कुछ इस तरह थी कि प्रातःकाल 11 बजे से पूर्व और सायंकाल 4 बजे के बाद उनका नगर प्रवेश वर्जित था क्योकिं इन समयों में परछाइयाँ अपेक्षाकृत अधिक लंबी होती है , अतः किसी दलित जाति के व्यक्ति की परछाई से अपवित्र हो जाने का ज्यादा खतरा ऊँची जाति के लोगों को रहता था । ब्रिटिश शासनकाल में प्रकाशित

त्रावणकोर के गजट रिपोर्ट में किन-किन दलित जातियों से ऊँची जातियों के लोग कितने-कितने फूट की दूरी से अपवित्र हो जाते हैं , उसका उल्लेख किया है । बहरहाल जिन जातियों का जीवन ही भयंकर दरिद्रता और संताप में व्यतीत हुआ हो उनके जीवन में समस्याएँ न हो तो ही आश्चर्य होगा ।

यथार्थ धर्मिता ही साहित्य का प्राण तत्व है , अतः दलित साहित्य में इन समस्याओं का बेबाक चित्रण मिलना स्वाभाविक ही है । दलित साहित्य इन समस्याओं से एवं जीवन की कठोर एवं निर्मम वास्तविकताओं से जूझता रहा है । इस संदर्भ में डॉ. पारुकांत देसाई का कहना है कि " दलित साहित्य जीवनाभिमुखी साहित्य है , जीवनवादी साहित्य है , मानव और केवल मानव ही उसके केंद्र में है, मानव-मूल्य , मानव-धर्म , मानव-कर्म उसके केंद्र में रहे हैं , न्याय और विवेक उनके केंद्र में है , तर्क और प्रमाण उसके केंद्र हैं ' कला कला के लिए ' नहीं ' कला जीवन के लिए ' का विचार उसकी चिन्ताएँ उसके केंद्र में है । उसका जीवन से सीधा सरोकार है , जीवन की समस्याओं तथा कठोर एवं निर्मम वास्तविकताओं से जूझने का माददा उसमें है । " [1] इस प्रकार दलित साहित्य दलित जीवन की इन अनगिनत बर्बरता पूर्ण समस्याओं को उकेरता है ।

दलित काव्य साहित्य में भी इन समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली है । कवि खुद इन अमानवीय अत्याचारों के भुक्त भोगी रहे हैं , अतः उन्होंने अपनी रचनाओं में इस अमानुषी अत्याचार को बखूबी चित्रित किया है । हमारा अध्ययन समकालीन कविता के संदर्भ में है , अतः यहाँ हम समकालीन कवियों की रचनाओं के आधार पर दलित जीवन की समस्याओं का आकलन करने का प्रयास करेंगे ।

दलित जीवन की समस्याओं को विभिन्न श्रेणियों में बाँट सकते है, जैसे सामाजिक समस्याएँ , आर्थिक समस्याएँ ,पारिवारिक समस्याएँ , धार्मिक समस्याएँ, नैतिक समस्याएँ , मनोवैज्ञानिक समस्याएँ आदि लेकिन ये सारी समस्याएँ परस्पर एक दूसरे से संबधित हैं । कई बार ऐसा लगता है कि किसी एक प्रकार की समस्या का उत्स या मूल किसी दूसरे प्रकार की समस्या में पाया जाता है । अतः केवल

अध्ययन की सुविधा के लिए ही हमने इन समस्याओं का वर्गीकरण करने का प्रयास किया है ।

5.1 सामाजिक समस्याएँ

मनुष्य सामाजिक प्राणी है , अतः समाज की प्रत्येक ईकाई चाहे वह अलग-अलग जातियाँ हो , उन जातियों के बीच के आंतर संबंध हो या उन जातियों की परंपराएँ या उनका व्यवस्था तंत्र हो , मनुष्य को आंदोलित एवं प्रकंपित करती हैं । दलित तो समाज से पहले ही तिरस्कृत और बहिष्कृत रहा है । उसके सामाजिक संपर्कों पर रोक लगाकर उसे दुर्गम निवासस्थानों पर अपना ' आशियाना ' बनाने के लिए मजबूर किया गया है । उसके व्यवसाय , निवास , वस्त्र , सामाजिक संपर्क , भोजन आदि संबंधि अनगिनत निर्योग्यताएँ उस पर थोप कर समाज से अलग-थलक रखा गया है । समाज के त्रिवर्णों ने धर्म एवं शास्त्रों को बहाना बनाकर उनका युगों-युगों तक शोषण किया है, उन पर अमानवीय अत्याचार किये हैं । दलित साहित्यकारों ने इस नारकीय जीवन को भोगा है और इसलिए उन्होनें अपनी पीड़ाओं को, वेदनाओं को अपनी रचनाओं के द्वारा अभिव्यक्ति दी है । दलित साहित्य में आक्रोश एवं विद्रोह की जो लपटें दिखाई देती हैं , उसकी चिंगारी यही समस्याएँ एवं वेदनाएँ है । जीवन का भोगा हुआ यथार्थ ही उनकी रचनाओं का चालकबल है ।

दलित साहित्यकार जीवन को यथार्थ के धरातल पर ही देखता है । दलित समाज की अति उपेक्षित, तिरस्कृत एवं मजबूर स्थिति का आकलन दलित कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि की निम्नलिखित पंक्तियों में स्पष्ट होता है -

" घुटनों पर टिकीं कुहनियाँ / और हथेलियों में थमा सिर / बेबस है वक्त के इस पड़ाव पर / जहाँ शब्द और भाषा अपनी पहचान खो चूके हैं।" [2]

समकालीन दलित साहित्य निश्चित रूप से अपनी समस्याओं और अभावों का रोना-धोना नहीं है , बल्कि क़रारी चोट है, उन स्त्रोतों पर जहाँ से यह समस्याओं

का प्रादुर्भाव होता है । आज का दलित साहित्यकार समाज को दर्पण दिखाकर उसके नकली सलमे सितारों की चमक-दमक को नष्ट करके सत्य का तेजपुंज प्रकाशित करता है । उसके स्वर में अब बिनती या गिड़गिडाहट नहीं है वरन् तार्किक ललकार है - " हमारी दासता का सफ़र तुम्हारे जन्म से शुरू होता है ।

और इसका अंत भी तुम्हारे अन्त के साथ होगा । " [3]

दलित वर्ग समाज में तिरस्कृत एवं कटा हुआ ही रहा है । उसे अन्य त्रिवर्ण समाज से किसी भी प्रकार का सपंर्क बनाने से रोका गया था । उसे समाज से दूर रहने के लिए बाध्य किया गया था । दलित संपर्कों को लेकर भारतीय समाज में अनेकों भ्रमणाएँ फैली हुई थीं और इसी वजह से पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधों तक को पूजने वाला भारतीय हिंदू समाज इन मानवों के स्पर्श को अपवित्र मानता था । सतनाम सिंह ने इस विडम्बना को शब्दबद्ध करते हुए लिखा है कि -

" यहाँ आदमी / कीडे-मकोड़ों की तरह / मर रहे हैं / और वे हैं कि
गाय और गोबर की / रक्षा की बात कर रहे हैं । " [4]

त्रिवर्ण समाज की यही धार्मिक एवं सामाजिक अस्पृश्यता ही दलितों के दुःखों का प्रमुख कारण रही है । अतः अस्पृश्यता दलित जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है । समकालीन दलित कवियों ने अपनी रचनाओं में इस समस्या को तीव्रता के साथ उकेरा है , और आधुनिक तथाकथित 'सभ्य' समाज के सामने तर्क पूर्ण प्रश्न उठाए हैं । अतः सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत हम अस्पृश्यता एवं अन्य ऐसी समस्याओं को प्रस्तुत करना चाहेंगे जिनकी वजह से दलित आज तक ' दलित ' ही रहा है ।

5.1.1 अस्पृश्यता की समस्या

ब्रह्मा के पैरों से पैदा हुई इन ' ब्रह्म संतानों ' को उनके ' सहोदर' बंधुओं ने हंमेशा अनछूआ रखा है । धर्म-शास्त्रों एवं ' महाऋषि ' मनु ने इन्हे 'अंत्यज' बनाए रखने में अपना हर संभव योगदान दिया है । दलितों की परछाई से भी अपवित्र हो जानेवाले

इन ' सवर्णों ' ने दलितों के साथ एक बहुत बड़ा फ़ासला रखा , उन्हें मानवोचित अधिकारों से वंचित कर दिया एवं उनका धार्मिक , शारीरीक , मानसिक , सामाजिक सांस्कृतिक एवं भावनात्मक उत्पीड़न एवं दलन किया ।

भारतीय समाज की यह पिछड़ी मानसिकता आज भी अप्रत्यक्ष रूप से अपनी मौजूदगी दर्ज कराती है । गांधीजी ने दलितों को ' हरिजन ' कहा । ' हरि ' अर्थात् भगवान एवं ' जन ' अर्थात् लोग । ' हरि ' और ' जन ' का सटिक प्रयोग करते हुए मलखान सिंह ने ' हरिजन ' की समस्या को उजागर किया है -

" हमारे गाँव में भी / कुछ हरि होते हैं / कुछ जन होते हैं / जो हरि होते हैं
वह जन के साथ / न बैठते हैं / न उठते हैं / न खाते हैं / न पीते हैं
यहाँ तक कि जन की / परछाईं तक से परहेज करते हैं /यदि कोई प्यासा जन
भूल या मजबूरी बस / हरि कुएँ की जगत पर / पाँव भी रख दे
तो कुएँ का पानी / मूत में बदल जाता है । " [5]

जब 'हरि' हरिजन के साथ 'जनोचित' व्यवहार नहीं कर पाता तब 'जन' उस 'हरि' से दूर होते जाते हैं । एकलव्य , शंम्बूक , कर्ण जैसे ' जन ' इन कथित 'हरियों' के शिकार बन गए हैं । शायद यही वजह है कि 'हरिजन' शब्द भी तिरस्कार का सूचक प्रतीत होता है । शब्दों के इस अधोपतन को मोहनदास नैमिशराय ने कुछ इस तरह देखा है - " शब्द ही तो थे / जो मनुस्मृति में लिखे गए / राम राज चला गया
पर शम्बूक की चीख अभी बाकी है / जैसे दलितों की पीठ पर
चोट के निशान / शब्द सिसकते नहीं , बोलते हैं / चोट करते हैं
जैसे दलित से हरिजन / और हरिजन से दलित " [6]

अस्पृश्यता ने दलित जीवन को नारकीय बना दिया है । धर्म-शास्त्रों ने इन मानवों के साथ पशु से भी बदतर व्यवहार करने का आदेश दिया । इन्हे 'ताड़न के अधिकारी' मानकर उनकी ताड़ना को धार्मिक स्वीकृति मिलने के कारण विधर्मी लोग भी दलितों के साथ वैसा ही बर्ताव करते आये हैं , जैसे उनके सहधर्मी करते हैं ।

दलित को कोई सहारा नहीं देता इसीलिए उसके लिए यह समाज व दुनिया अपरिचित-सी है। इस नये इलाके में वह छत की तलाश में भटकता फिरता है -

" इस अपरिचित बस्ती में / घूमते हुए मेरे पाँव थक गए हैं
अफ़सोस ! एक भी छत / सर ढ़कने को तैयार नहीं /हिन्दू दरवाजा खुलते ही
कौम पूछता है और / नाक भौं सिकोड़ / गैर-सा सलूक करता है।
नमाज़ी - दरवाजा / बुतपरस्त समझ /
आँगन तक जाने वाले रास्तों पर कुण्डी चढ़ाता है / हर उपले दरवाजे पर
पहरा खड़ा है और / मेरे खुद के लोगों पर / न घर है , न मरघट। "[7]

ऐसी अनाथ एवं लाचार स्थिति को भले ही प्राचीन समय में नियति मान लिया गया था , लेकिन अब आधुनिक समय में इन 'दलितों' को अपने दमन का एहसास होने लगा है और इसीलिए वे इन बंधनों से मुक्ति के लिए छटपटा रहे हैं। मुक्ति की इस छटपटाहट को कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है - " बाहें फड़कती हैं / जिहवा मचलती है।
प्रगति अवरूध्द / जाति - व्यवस्था के बंधन में अतीत , शोषित , प्रताड़ित
इतिहास गहन अंधकार में डूब गया है। " [8]

वर्ण-व्यवस्था ने भारतीय समाज को इस तरह विभाजित कर दिया है कि समाज का एक पूरा हिस्सा अपने विकास , उन्नति और उत्कर्ष से पूरी तरह वंचित रहा । यहाँ मानव और मानवता का कोई मूल्य नहीं है, नाहीं उसके गुण एवं योग्यताओं का कोई महत्व है। यहाँ उसकी पहचान केवल और केवल उसकी जाति है और उसी के आधार पर उसका सामाजिक स्वीकार या तिरस्कार होता है। उच्च कुल में पैदा हुआ कैसा भी अयोग्य 'निर्गुण' और 'नालायक' समाज में सम्मान का हकदार होता है और नीची जाति का सुयोग्य एवं गुणी व्यक्ति भी उसी दलित-दमन का अधिकारी बन जाता है। डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने उपरोक्त भाव को व्यक्त करते हुए कहा है कि –

" इन्सानियत की नहीं कोई कीमत / और न कोई पदवी है सद्‌चरित की
जात-पाँत के सांचे में ढलकर / यहाँ परख होती है मानव की ।
यहाँ / आदर - निरादर भी बँटता है / जात-पाँत की तराजू से । " [9]

जाति - व्यवस्था की आड़ में किसी भी मानवी को उसके अधिकारों से वंचित रखना और जितना भी हो सके उसका उत्पीड़न और दलन करना , उच्च वर्ग के लोगों को बहुत ही स्वाभाविक लगता है , क्योकिं वह स्वयं इस दलदल का भोगी नहीं है , उसे स्वयं कभी इन निर्मम अत्याचारों का साक्षात्कार नहीं हुआ , इसीलिए कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने उन्हें यह प्रश्न किया है कि -

" यदि तुम्हें / मरे जानवरों को खींचकर / ले जाने के लिए कहा जाये
और / कहा जाए ढ़ोने को / पूरे परिवार का मैला /
पहनने को दी जाए उतरन / तब तुम क्या करोगे ? " [10]

निश्चित ही इतने बर्बरतापूर्ण जीवन को भोगने के बाद , ऐसी समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश की ज्वालाएँ प्रज्वलित होंगी ही । वर्णव्यवस्था की चार मंजिला इमारत को ज़मीनदोस्त करने की मानिंद दलित कवि विद्रोह पर उतर आता है , उसे अपने आत्म सम्मान की रक्षा करनी है , अतः वह कराह उठता है कि -

" भेद पुरखों ने किये जो भूल से / चुभ रहे हैं आज मन को शूल से ।
श्रृंखला जड़ जातियों की तोड़ दो /इस नये युग को नया अब मोड़ दो ।। " [11]

दलित साहित्य में दलितों की दुर्दशा का वर्णन अधिक हुआ है । यही दुर्दशा दलित साहित्य का प्रेरणा स्रोत है । दलित अपने जीवन यापन के लिए कठोरतम परिश्रम करता है , फिर भी वह दो जून भरपेट रोटी नहीं बटोर सकता है , उसे रोटी-कपड़ा और मकान तीनों के अभाव में जीवन गुजारना पड़ता है । अभावग्रस्त जीवन में उनके सपनीले कहकहों की गूंज दलित साहित्य को चेतनवंत बनाती है । समाज में मानवी तो ठीक , लेकिन देवालय में बैठा हुआ पथ्थर का देवता भी उसके छूने भर से अपवित्र हो जाता है । समाज की ऐसी धार्मिक कूपमंडूकता का शिकार केवल और

केवल दलित ही होता है । उसकी ऐसी अवदशा पर चित्कार करते हुए कवि सुधाकर कहते हैं कि - " महेनतकश होने पर भी , जो पेट नहीं भर पाते हैं ,

जिनके छूने भर से पत्थर के देव भ्रष्ट हो जाते हैं ।

इन दलितों की अब और अधिक दुर्दशा नहीं देखी जाती ,

यह जीवन भी क्या जीवन है यह देख - देख फ़टती छाती । " [12]

समाज में व्याप्त जाति-भेद दलितों को नारकीय जीवन में धकेलने की सोची-समझी कुव्यवस्था प्रतीत होती है । ऐसी व्यवस्था से मुक्ति पाकर ही कोई समाज प्रगति पथ पर अग्रसर हो सकता है । इसलिए जाति-व्यवस्था की क्रूरता को समाप्त कर समानता का एक नया चमन खिलाने की बात करते हुए श्यौराजसिंह 'बेचैन' ने कहा है कि - " देश ले रहा है / देश प्रेमियों के इम्तिहान / सब हो समान

असमानता हटाओ रे / भूल जाओ / आज से अछूत या सछूत भेद

आदमी हो आदमी का रूप अपनाओ रे / तारों से गगन को

बहारों से चमन को भी / जन से वतन को नमन करवाओ रे । " [13]

दलित सहित्य की तीव्रता , प्रखरता एवं उसके प्रकंपन का उत्स जाति-भेद और छुआछूत में ही है । मानवों ने इन मानवों के साथ जो पशुवत् क्रूरता का आचरण किया है वही दर्द , वही पीड़ा दलित साहित्य को चेतनवंत बनाए हुए है । दलित जीवन के कटु अनुभव ग्रामीण समाज में ज्यादा पाए जाते हैं, क्योकिं दलित साहित्य ग्रामीण साहित्य का ही एक हिस्सा है । इसलिए ग्रामीण रचनाकारों का मानना है कि - " यदि 'अछूत का अनुभव' अथवा ' जाति व्यवस्था का कलंक' अलग कर दे तो सब पीड़ित लोगों का जीवन एक सरीखा है । प्रत्यक्ष में जातिव्यवस्था की परिपाटी चालू होते हुए उसे नकार कर " सभी का जीवन समान स्वरूप का है " यह कहने का अर्थ है वास्तविकता को नकारना । छुआछूत के अनुभव की और आँखे बंद नहीं की जा सकती कयोंकि ये अनुभव हजारों मनुष्यों के हैं और हजारों वर्षों से चले आ रहे हैं । दलित साहित्य इस अस्पृश्यता में से निर्मित हुआ साहित्य है । यही इस साहित्य की विशेषता है । " [14]

समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग जो अन्य वर्गों की गंदगी ढ़ोता है , उनके लिए सुविधाओं का निर्माण करता है , अपना खून-पसीना बहाकर त्रिवर्णों की सेवा करता रहता है , वह वर्ग खुद ही अनेक संतापों से ग्रस्त है । डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी ने कुछ ऐसे विचारों को प्रस्तुत किया है -

" वह बरसों से / मैला साफ़ करता रहा है
सोने के बदले सोना खाद देकर / उपजाऊ भूमि को / वह
बबूल औ ढाक ही बनता रहा है / लकड़ी बन जलता रहा
गिले कपड़े सा निचुड़ता रहा है / परंतु सवर्ण ही नहीं
अन्य अस्पृश्य भी देखते रहे हैं / उसकी तरफ / घृणा से " [15]

दलित साहित्य में व्याप्त खीज मानवोचित सम्मान की तलाश की परिणीती है । मनुष्य होते हुए भी उसके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाता है , जिसका एकमात्र कारण उसकी जाति है । जन्म के कुल या जाति को लेकर उसे जब अमानवीय यातनाओं का शिकार होना पड़ता है , तब उसका दलित दिल कराह उठता है और समाज की ऐसी दकियानूसी विचारधारा को ललकारता है -

" हम भी / तुम्हारी तरह ही / इस धरती पर आए हैं / एक ही द्वार से
रक्त , हाड़ , मांस की काया / भी है हमारी / तुम्हारी तरह / फिर
तुम्हारी / हम से / यह छुआछूत / क्यों है । " [16]

धर्म और शास्त्रों की आड़ में दलितों के साथ जो अन्याय और अत्याचार हुआ है , उसकी पीड़ा उसकी टीस उसके दिल में है । शायद इसीलिए वह अपने धर्म के खिलाफ़ खड़ा हो गया है । वास्तव में जो धर्म मानव को पशु मानता हो उसे धर्म की संज्ञा देना ही वाजिब नहीं है । जाति और धर्म के नाम पर लोगों को सदियों से अपमानित एवं प्रताड़ित किया जा रहा है । वह अगर इसकी फ़रियाद करना चाहे तो भी किससे करे ? क्योकिं उसका भगवान ही उसे अछूत मानता है । कवि श्री सूरजपाल चौहान ने हिन्दू धर्म को दर्पण दिखाते हुए यथार्थ ही लिखा है कि –

" मस्जिद में आदर मिले , गुरुद्वारे सम्मान ।

मानवता है चर्च में , मंदिर में अपमान ।। " [17]

हर जगह से अपमानित और तिरस्कृत दलित अपने आप को अनपेक्षित 'Unwanted' मानने लगता है । समाज के त्रिवर्णों की सेवा में वह अपना जीवन गुजार देता है , इसीलिए जीवन के अन्य पहलुओं से , जीवन के रंगों से अनभिज्ञ ही रह जाता है । उसे तो यही लगता है कि इस तरह का पशुवत् जीवन ही उसकी नियति है और इतिहास है ।

" सिर पर गू-मूत से भरा टोकरा / मैं भंगी का छोकरा

* * * * * * * * * * * *

जात का ओछापन / और बसीठों की जूठन

बस, मुझे तो है इतना ही याद / मेरा इतिहास... । " [18]

ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न यह ' मानव ' के शरीर में जैसे कोई आत्मा है ही नहीं । 'ब्रह्मा' से उत्पन्न होते हुए भी उसे कभी ' ब्रह्मपुत्र ' जैसा सम्मान नहीं मिला । ब्रह्मा के एक अंश को ही इतना अपमानित और धृणित होना पड़ा यह एक अजीब विडम्बना है । ब्रह्मा से उत्पन्न एक 'अंश' समाज में अत्याधिक सम्मान और आदर पाता है , वहीँ दूसरा 'अंश' आज भी अपने वजूद के लिए तड़प रहा है , ऐसा क्यों...?

" चूहड़े या डोम की आत्मा / ब्रह्म का अंश क्यों नही है

मैं नहीं जानता शायद आप जानते हो । " [19]

अस्पृश्यता दलित समाज की सबसे बड़ी समस्याओ में से एक है । छुआछूत के कारण ही वह समाज से अलिप्त , बिछड़ा हुआ रहता है । उसकी गरीबी , उसकी आह-कराह , उसकी मानवनिर्मित नियति , उसका आदि और उसका अंत सभी इस छुआछूत से प्रभावित है ।

5.1.2 दलितों के सामाजिक अपमान एवं अत्याचार की समस्या

समाज व्यक्तियों का , व्यक्तियों के लिए एवं व्यक्तियों के द्वारा संचालित तंत्र व्यवस्था है । इसके केंद्र में केवल और केवल मानव ही होता है । नंदूराम ने समाज

की अवधारणा स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - " व्यकित समाज की न्यूनतम परंतु महत्वपूर्ण ईकाई है , अतः समाज व्यक्तियों के बीच संबंधो का तंत्र है । व्यक्ति किसी-न- किसी जाति , जनजाति , प्रजाति , लिंग , समुदाय या संप्रदाय का न केवल संरचनात्मक और जन्मजात सदस्य होता है , बल्कि वह अपनी सामाजिक अंतः क्रिया और संबंधो को सुचारू रूप से चलाने के लिए समूह , वर्ग , संस्थाओं एवं समितियों की रचना स्वयं करता है , जो विशेष प्रकार के रीति-रिवाजों , मूल्यों तथा नियमों से संचालित होते हैं । " [20]

लेकिन ऐसे जाति-वर्गीकरण का आधार जब बे-सिर-पैर मान्यता हो , जिसका न तो कोई तार्किक औचित्य है न तो कोई वैज्ञानिक संदर्भ तब ऐसे कपोल कल्पित 'सत्य' के आधार पर हुआ विभाजन एक निश्चित वर्ग या समुदाय को प्रताड़ित करने का घिनौना षडयंत्र ही प्रतीत होता है । मेरे निर्देशक डॉ. एन.एस.परमार साहब ने इस षडयंत्र का पर्दाफाश करते हुए दलितों पर थोपी गई निर्योग्यताओं का विस्तृत ब्यौरा दिया है । - " अस्पृश्य जातियों के सामाजिक संपर्क पर एक प्रकार की रोक लगा दी गई थी । वे सभा-सम्मेलनों , गोष्ठियों , पंचायतों , उत्सवों एवं सामाजिक समारोह में भाग नहीं ले सकते थे । कई स्थानों पर तो उनकी छाया तक को अस्पृश्य माना जाता था । उनको सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की आज्ञा नहीं थी क्योकिं , बहुत से सवर्ण हिन्दुओं को उनके दर्शन मात्र से अपवित्र होने की आशंका रहती थी । दक्षिण भारत के कई स्थानों पर तो उनको सड़कों पर चलने का अधिकार भी नहीं था । उनको छात्रावासों में रहने नहीं दिया जाता था । उच्च जाति के द्वारा जिन चीज-वस्तुओं का उपयोग होता था , उनका उपयोग वे नहीं कर सकते थे । ताँबा पित्तल के बर्तनों का उपयोग नहीं कर सकते थे । धोबी उनके कपडें नहीं धोते थे । नाई उनके बाल नहीं बनाते थे और कहार उनका पानी नहीं भरते थे । एक पृथक समाज के रूप में उनको रहना पड़ता था । " [21]

अर्थात् हम कह सकते है कि सवर्णों के समाज में ही नहीं बल्कि इनके दिलों में भी दलितों के लिए कोई स्थान नहीं था । कदम-कदम पर उन्हें अपमानित एवं

प्रताड़ित किया जाता था । समकालीन दलित कवियों ने अपनी कविताओं में अपमान की इस समस्या को भली-भाँति उकेरा है ।

मनुस्मृति और अन्य धर्म शास्त्रों में शूद्रों के लिए अनेक निर्योग्यताओं का विवरण पाया जाता है । यह सारी निर्योग्यताएँ केवल एक वर्ग विशेष के लिए ही रूढ़ कर दी गई और उनपर अत्याचार करने का कारण बना दी गई । दलित कवि श्री कँवल भारती ने बहुत ही अच्छा प्रश्न उठाया है कि -

" यदि धर्मसूत्रों में लिखा होता / तुम ब्राह्मणों , ठाकुरों और वैश्यों के लिए
विद्या , वेद-पाठ , और यज्ञ निषिद्ध है / यदि तुम सुन लो वेद का एक भी शब्द ,
तो कानों में डाल दिया जाय पिघला शीशा / यदि वेद-विद्या पढ़ने की करो धृष्टता ,
तो काट दी जाय तुम्हारी जिह्वा / यदि यज्ञ करने का करो दुस्साहस ,
तो छीन ली जाय तुम्हारी धन-संपत्ति / या , कत्ल कर दिया जाय /
जब तुम्हे उसी स्थान पर / तब , तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? " [22]

कुछ ऐसी ही बात मलखान सिंह ने भी उठाई है कि जब तक तुम इस दलित जीवन की समस्याओं के और पीडाओं के भुक्तभोगी नहीं बनोगे तब तक तुम्हें इस शापित जीवन की अनुभूति नहीं होगी ।

" तुम ! मेरे साथ आओ
चमड़ा पकायेंगे / दोनों मिल बैठकर / मेरे बेटे के साथ / अपने बेटे को भेजो
दिहाड़ी की खोज में / और अपनी बिटिया को / हमारी बिटिया के साथ
भेजो कटाई करने / मुखिया के खेत में / शाम को थक कर
पसर जाओ धरती पर / सूँघो खुद को / बेटे को / बेटी को
तभी जान पाओगे तुम / जीवन की गन्ध को / बलवती होती है जो
देह की गन्ध से । " [23]

जब तुम जीवन के इस दलदल का अनुभव करोगे तब शायद तुम्हें तुम्हारी क्रूरता और हमारी पीड़ाओं का एहसास होगा । हम जिन स्थलों पर निवास करते हैं वहाँ तुम एक पल भी नहीं ठहर पाओगे । हमारी जिंदगी बीत गई वहाँ तुम एक पल भी साँस

नहीं ले पाओगे । सूरजपाल चौहान ने खुला निमंत्रण दिया है सवर्णों को कि तुम एक बार हमारी बस्ती में आकर हमारे नारकीय जीवन का अनुभव करो –

> " सच कहता हूँ / मर जाएगी तुम्हारी नानी / सूअरों की ढों - ढों
> कीचड़ में लिसड़ते / कुत्तों की भों - भों / पता बताएगी तुम्हें
> एक नए स्वर्ग का / आओ / एक बार चले आओ / मेरे गाँव की भंगी बस्ती में
> न्यौता है तुम्हें । " 24

ऐसे यातनामय जीवन एवं हर पल तिरस्कृत एवं आहत स्वाभिमान के बावजूद दलितों ने अपने संस्कारों को कायम रखा है । सवर्ण समाज के हर अत्याचार को वह सहता आया है । सहनशीलता एवं नम्रता ही उसकी पहचान है । कवि मलखान सिंह ने इसका परिचय देते हुए लिखा है कि -

> " हमारे गाँव में नम्रता / जन की खास पहचान है
> और उद्दंडता हरि का बाँकपन / तभी-तो वह-बाहरे का लौंडा
> जो ढंग से नाड़ा भी नहीं खोल पाता / को दूर से ही आता देख
> मेर बाबा / ' कुँवरजू पाँव लागूं ' कहता है / और वह अशिष्ट
> अपना हर सवाल तू से शुरू करता है / तू पर ही ख़त्म करता है । " 25

दलित वह धूपबत्ती है जो जलकर भी सौरभ फैला जाती है । दलित वह मोमबत्ती है जो जलकर भी रोशनी दे जाती है । दलित जीवन इस दृष्टि से श्रेष्ठ परोपकारी जीवन है । वह खुद अभावों में जीकर दूसरों के लिए सुविधाओं का निर्माण करता है । वह खुद तिरस्कृत एवं प्रताड़ित होता है, सवर्णों के झूठे अभिजात्य एवं अहम को पोषकर उसे संतुष्ट करता है । कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस संदर्भ में कहा है कि -

> " अंधेरे में /कालिख पुता मेरा जिस्म / जिसे तुमने अपवित्र / घोषित कर दिया
> तिल-तिल जल रहा है / तुम्हें रोशनी देने के लिए । " 26

दलितों को सवर्णों की ओर से केवल और केवल नफ़रत ही मिली है । वह हमेशा तिरस्कृत और उपेक्षित जीवन जीता रहा है । दलितों के ऐसे तिरस्कार की परंपरा सदियों से चली आ रही है । तिरस्कार की इस आग ने दलितों के जीवन को राख कर दिया है और अभी भी यह आग पीढ़ी-दर-पीढ़ी फैल रही है -

" तुमने सौंपी है घृणा / अपने बच्चों को / मिली थी तुम्हें जो विरासत में
तुम्हारे बाप - दादाओं से / और उन्हें / उनके बाप - दादाओं से
घृणा की यही आग / फैलती रही सदियों - सदियों से
अपने देश के परिवेश में । " [27]

समस्याएँ और प्रताड़न दलित जीवन की अघोषित विशिष्टता है । उत्पीड़न , अपमान , तिरस्कार आदि दलित जीवन के अभिन्न अंग हैं । क्योकिं दलित प्रताड़ना सवर्णों का जन्मसिध्ध एवं शास्त्रसिध्ध अधिकार है । अपने इस अधिकार का प्रयोग प्रत्येक सवर्ण करना चाहता है और अधिकारों को भोगने की यह मानसिकता ही दलितों के जीवन को रौंद रही है । कवि श्री मलखान सिंह ने समाज को 'मदान्ध हाथी' बताते हुए इस संदर्भ में कहा है कि –

" मदान्ध हाथी / लदमद भाग रहा है / हमारे बदन / गाँव की कंकरीली
गलियों में घसिटते हुए / लहूलुहान हो रहे हैं / हम रो रहे हैं
गिडगिडा रहे हैं / जिन्दा रहने की भीख माँग रहे हैं
गाँव तमाशा देख रहा है । " [28]

जीवन की इन त्रासदियों से मुक्ति पाना ही दलितों का चरम लक्ष्य होता है । वह छटपटाता है इन धर्म-बंधनों से मुक्त होने के लिए, वह हाथ-पैर मारता है अपने आप को मानव सिद्ध करने के लिए, वह एड़ी चोटी का ज़ोर लगा देता है निर्योग्यताओं की इस काल कोठरी से बाहर आने के लिए । लेकिन तब उसे अपनी मजबूरी और मर्यादा रोक लेती है विद्रोह करने से । जिस यातनामय दलदल का वह भोगी रहा है ,अपनी आने वाली नस्ल को वह उससे बचाए रखना चाहता है । उसे

डर है कि जिन पीड़ाओं को उसने भोगा है , झेला है वह कहीं उसके बेटों के जीवन की भी वास्तविकताएँ न बन जाए । कवि मलखान सिंह ने लिखा है कि -

" मरते समय बाप ने / डबडबाई आँखों से कहा था कि बेटे
इज्ज़त , इन्साफ़ और बुनियादी हक्क / सब के सब आदमी के आभूषण हैं
हम गुलामों के नहीं / मेरी बात मानो / अपने वंश के हित में
आदमी बनने का खाब छोड़ दो / और चुप रहो । " 29

यही मजबूरी दलितों को दलित बनाए रखती है । दलित की संतान दलित-जीवन की अधिकारीणी बनकर रह जाती है । उसकी जातिगत निम्नता का बोध उसे पल - पल चीरता रहता है और आतंक और अत्याचार का यह भयानक खेल चलता रहता है... चलता रहता है ।

" जब से हम पैदा हुए हैं / हमने देखा है कि रूपो / भंगिन मैला - ढोते - ढोते
इन 'बडों' का बूढ़ी / हो चली है । उससे / पहले उसका दादा , परदादा
माँ और आगे कितने / ही परदादा माँ व / नानियाँ चले गए जूठा खाते
मैला उठाते इन 'महाजनों' / का और अब भी उसके लड़के व
लड़की भी मैला उठाने में लगे हैं / अपनी माँ के साथ । " 30

सवर्ण समाज ने दलितों के दलन में कोई कमी नहीं छोडी है । दलितों को डाँटना , उनसे अमानवीय व्यवहार करना और उन्हें पीड़ित एवं प्रताड़ित करने में ही सवर्ण समाज अपनी आधिकारिता ढूँढ़ता रहता है । समाज में दलितों की स्थिति ऐसी है कि कोई भी व्यक्ति उनसे किसी भी प्रकार का व्यवहार कर सकता है । इस विषय में डॉ. एन.एस.परमार साहब के विचार हैं कि - " समाज में दलित वर्ग के लोगों की जो स्थिति है , उसे देखते हुए कोई भी व्यक्ति बहुत आसानी से , मन में किसी भी प्रकार का अपराध बोध या पछतावे का भाव लाये बिना दलित वर्ग के लोगों का अपमान कर जाता है , उनके साथ गाली-गलौज का व्यवहार करते हैं । उनको मारते-पीटते हैं । " 31

जब व्यक्ति दुःखों से धिर जाता है और मुक्ति की कोई राह नहीं सूझती है तब वह अपने आराध्य की शरण में जाता है , परमेश्वर की शरण लेता है । लेकिन जहाँ परमेश्वर ने ही उनके दलन का आदेश दिया हो , वह कहाँ जाए..? किसे पुकारे..? वह दिल ही दिल में चीख उठता है कि –

" ओ परमेश्वर !/ कितनी पशुता से रौंदा है हमें / तेरे इतिहास ने ।
देख , हमारे चेहरों को देख / भूख की मार के निशान
साफ़ दिखाई देंगे तुझे / हमारी पीठ को सहलाने पर /बबूल के काँटों से दोनों मुट्ठियाँ भर जाएँगी तेरी । " [32]

ये सर्वहारा वर्ग के लोग हमेशा खून-पसीने की कमाई खाते हैं । वे सवर्णों की भाँति दूसरों की कमाई पर मोटे नहीं पड़ते है । समाज के विकास में इस मजदूर वर्ग का अनन्य योगदान रहा है । समाज की उन्नति का महल इन्हीं लोगों के श्रम , हिंसा और अपमान की बुनियाद पर खड़ा होता है । दूसरे शब्दों में कहें तो समाज का सुचारू संचालन इनके श्रम , शोषण एवं संतापों का आभारी है । दलित कवि जयप्रकाश कर्दम ने इसे स्पष्ट किया है –

" बाह्मण का मान / ठाकुर की शान / सेठ की तिजोरी / खेत - खलिहान
मिल-कारखाने/ कोठी और हवेली / मेरे श्रम और शोषण से / फले - फूले हैं
मेरी हिंसा और अपमान पर / खड़े हैं । " [33]

भारतीय समाज में दलितों का स्थान बिलकुल निम्न है । उन्हें हर कार्य के लिए अयोग्य , माना गया है । वे केवल ताड़न के अधिकारी बना दिए गए हैं । युगों-युगों से शोषित होता रहा यह समाज अपनी अस्मिता खो चूका है । वह इतना ज़लील हुआ है कि इज्ज़त क्या होती है , वह उसे पता ही नहीं । वह चाहकर भी समाज की अन्य समस्याओं से जूझ नहीं सकता । यह समाज ऐसी दयनीय स्थिति में रहा है कि वह देशहित की ललक अपने दिल में होते हुए भी देश के लिए कुछ न कर

सका क्योंकि , सवर्ण समाज ने इस वर्ग को स्वातंत्र्य-संग्राम के लिए भी अयोग्य ही माना । सी.बी.भारतीने अपने समाज की अवरुद्ध भावनाओं को शब्द दिये हैं -

" लूटकर कर हमारी आबरू / और फैलाते ही रहे हो तुम / अनवरत घृणा
और तुम्हारी इसी घृणा ने / किया है हमें कमजोर
जिससे हम होते रहे हैं बार - बार गुलाम / लड़ भी न पाये थे देश के लिए
कभी न एक होकर हम । " [34]

भारतीय समाज दलितों के शोषण के नये-नये तरीके एवं नये-नये हथकंडे अपनाता रहा है । दलित - दमन के द्वारा ही वे अपनी प्रतिष्ठा और निष्ठा बरक़रार रखना चाहते हैं । दलित-प्रताड़न ही , इस उच्च वर्णीय समाज का एक मात्र 'धार्मिक' एवं 'सामाजिक' कार्य बनकर रह गया है । कवि श्री जय प्रकाश कर्दम ने इनके शोषण के षड्यंत्र को बेनकाब किया है -

" इनके चौबारों में जले हैं / मेरे आँसुओं के दीप
इनके शयनकक्षों में बिखरे हैं / मेरी बहनों और बेटियों की
रोंदी गई अस्मिता के निशान , और / इनकी रंगशालाओं में गूंजता है
मेरी वेदनाओं का संगीत / इनकी चिमनियों से उठता है
मेरे अस्तित्व का धुँआ / इनकी भट्टियों में भुना है / मेरा शरीर । " [35]

जब से मनु ने वर्ण-व्यवस्था का 'आविष्कार ' किया तब से आज तक धर्म के कितने ही आदेशों को घोलकर पी जानेवाला भारतीय हिन्दू समाज मनुजी के इस व्यवस्थातंत्र का बड़ी मुस्तैदी से पालन कर रहा है । यह एक अजीब बात मानी जानी चाहिए । बड़े से बड़ा नास्तिक भी धर्म की इस अमानवीय जाति व्यवस्था को नकार नहीं सकता है । जाति और वर्ण व्यवस्था से हिन्दू त्रिवर्ण समाज को इतना अधिक लगाव और प्यार क्यों है ? क्यों वह दलितों को अलग-अलग तरीकों से नाम बदलकर भी , दलित ही रखना चाहता है ? कँही वे दलितों की क्षमता , सामर्थ्य और सर्वोपरिता से भयभीत तो नहीं है ? क्या उन्हे अपनी जातिगत उच्चता खतरे में प्रतीत होती है ?

कवि श्री अशोक भारती ने प्राचीन से लेकर अर्वाचीन तक के इस षड्यंत्रों की तालिका प्रस्तुत की है - " मैं ही हूँ / सतयुग से कलयुग तक ,

तुम्हारी 'पंडिताई' से बाहर / तुम्हारे झूठे प्रपंच /

ढकोसलों का शिकार , चाण्डाल ,चमार , पासी , दुसाध-हरिजन

में ही हूँ /मध्य एशिया से अयोध्या तक / तुम्हारी संस्कृति - संस्कार से बाहर

तुम्हारे अश्वमेध का निशाना / भील , मुंडा , कोल , संथाल- शेडयूल्ड ट्राईब ।" [36]

5.1.3 दलित नारियों के शोषण की समस्या

दलित समाज अपनी आजीविका के लिए पूर्णरूप से सवर्णों पर निर्भर था । इसलिए दलित स्त्रियों को इन त्रिवर्णों के खेत-खलिहानों मे आजीविका जुटाने के लिए काम पर जाना पड़ता था । इस दौरान उच्च वर्गों के पुरुषों द्वारा उनका अनेक प्रकार से जातीय एवं शारीरिक शोषण किया जाता रहा है । अगर देखा जाए तो दलित दमन के दौरान सब से अधिक शोषित दलित नारी ही रही है । दलित पुरुषों की तुलना में दलित नारी का दालित्य कहीं अधिक है । इस प्रकार वह दलितों में भी दलित रही है । गाँव के सत्ताधीश संपन्न वर्ग के जमींदार , ठाकुर आदि पुरुषों ने दलित स्त्रियों की विवशता का लाभ उठाकर उनका खूब यौनशोषण किया है और आश्चर्य की बात तो यह है कि इसे वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं । कोई दलित यदि इस संदर्भ में दाद -फरियाद करता है तो लोग उसे गंभीरता से नहीं लेते , बल्कि कईबार उसका मज़ाक उडाते हैं , उसे मारते -पिटते हैं ।

आश्चर्य की बात यह है कि दलितों की परछाई से भी अपवित्र एवं भ्रष्ट हो जानेवाला उच्चवर्गीय पुरुष जब दलित स्त्री पर बलात्कार करता है , तब वह भ्रष्ट या अपवित्र नहीं होता , बल्कि उसे अपना अधिकार समझकर अपने मनोरंजन हेतु दलित स्त्रियों की इज्ज़त के साथ खेलता रहता है । दलित चाहकर भी ऐसी पशुवत् बर्बरता के खिलाफ़ आवाज़ नहीं उठा सकता था , क्योकिं तब उसकी सुननेवाला कोई नहीं था । इस प्रकार दलित स्त्रियों का शोषण भी दलित समाज की एक भयंकर

त्रासदी बनकर उभरा है । समकालीन दलित कवियों ने अपनी कविताओं में दलित स्त्रियों की दुर्दशा का बेबाक वर्णन किया है । दलित अपनी माँ , बहन , बेटियों , पत्नियों पर हो रहे इस अत्याचार की शिकायत मनुष्यों से तो क्या भगवान से भी नहीं कर सकता है । अछूत मानकर जिन देवालयों के द्वार उसके लिए सदा-सदा के लिए बंद कर दिए गए थे , उन्हीं देवालयों में उनकी स्त्रियों को देवदासी बनाकर रखा जाता था और हर कोई 'धार्मिक' प्रकृतिवाला पुरुष भगवान का प्रसाद मानकर उनका उपभोग करता रहता था । द्रोपदी के वस्त्र बढ़ाकर उसकी इज्ज़त की रक्षा करनेवाला कनैया अपने ही आँगन में ऐसी हजारों द्रोपदियों के चीर-हरण का मूक प्रेक्षक बना रहता था , क्योकिं शायद उसे भी इन्हें छूने से या इनके वस्त्र बढ़ाने से अपवित्र हो जाने का भय सता रहा था । दलित कवि मोहनदास नैमिशराय ने इस प्रकार के मूक प्रेक्षक बननेवाले भगवान को भगवान ही नहीं माना है -

" ईश्वर की मौत / उस दिन होती है / जब किसी महिला को बनना पड़ता है
देवदासी / जाना पड़ता है वेश्यालय । " [37]

देवालय दलित स्त्रियों के लिए वेश्यालय बन जाता है । क्या ईश्वर इतना मजबूर और इतना क्रूर हो सकता है ? अपनी आँखों के सामने हो रहे अधर्म को देखकर वह लाचार , असहाय बना रह सकता है ? इस अधर्म को नष्ट करने के लिए वह कोई अवतार धारण क्यों नहीं करता ? क्या वह अपना वादा ' संभवामि युगे-युगे' भूल गया है ? डॉ.सी.बी.भारती ने ऐसे अत्याचारों को घटित होते हुए देखकर ईश्वर के अस्तित्व पर ही सवाल खड़ा किया है ।

" जब भी सुनता हूँ नुचती हुई नारी का चित्कार / बनाई जाती देवदासियाँ
उठते हैं मेरे मस्तिष्क में प्रश्न / ईश्वर हो ही नहीं सकता । " [38]

दलित नारी और सवर्ण नारी दोनों ही है तो स्त्री ही लेकिन दोनों की दशा अलग-अलग है । सवर्ण नारियों के जीवन में आजीविका के लिए भटकना नहीं लिखा है , उन्हें आजीविका हेतु अपना तन समर्पित नहीं करना पड़ता और नाहीं मजबूरी की वे यातनाएँ और पीडाएँ झेलनी पड़ती हैं , जो दलित नारी की नियति बन चूकी

हैं । दोनों महिलाओं की स्थिती भिन्न है । कवयित्री रजनी तिलक ने नारी जीवन की विडम्बनाओं का वर्णन कुछ इस प्रकार किया है -

" औरत-औरत होने में / जुदा-जुदा फर्क नहीं क्या ?
एक भंगी तो दूसरी बामणी / एक डोम तो दूसरी ठकुरानी
दोनों सुबह से शाम खटती हैं / बेशक , एक दिन भर खेत में
दूसरी घर की चारदीवारी में / शाम को एक सोती है बिस्तर पे
तो दूसरी काँटों पर ।

* * * * * * * * * *

औरत नहीं मात्र एक जज़बात/हर समाज का हिस्सा / नहीं वह भी जातियों में
धर्म की अनुयायी है / औरत-औरत में भी अंतर है । " [39]

सर्वहारा दलित समाज सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक जैसी अनगिनत मजबूरियों की वजह से अपने समाज की नारियों की रक्षा करने में असमर्थ रहा है । दलित नारी सर्वभोग्या होती है , कोई भी उसे किसी भी तरह से अपने भोग-विलास का माध्यम बना लेता है । दलित अपनी नारियों की अस्मिता की रक्षा के मामले में असमर्थ है । ऐसी मुर्दा जातियों के घर जन्म लेना ही उन स्त्रियों की सबसे बड़ी भूल है । दलित जाति अपने समाज की ऐसी दुर्दशा पर आँसू बहाने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर पाती । कवि अशोक भारती ने दलित स्त्रियों के नारकीय जीवन का चित्र कुछ इस प्रकार खींचा है ।

" मुर्दा कौमें रोती हैं / अपनी उन बच्चियों के लिए / रौंद दी गई जो ,
औरत बनने से पहले / और सिसकती हैं , उनके लिए भी
जिन्हे रौंद दिया गया / औरत बनने की वजह से । " [40]

वर्ण व्यवस्था और अस्पृश्यता का बनाया हुआ महल जातिय सुख और भोग-विलास के क़गार पर आकर ढह जाता है , तार-तार हो जाता है । ब्राह्मण पुजारी देवदासी के साथ बलात्कार करते समय कभी भ्रष्ट , अपवित्र नहीं होता , डोम कन्या

की चुनरी उतारते वक्त कोई भी ठाकुर का उच्चवर्गीय स्वाभिमान आहत नहीं होता , अछूत कन्या का उपभोग जमीदार अपना अधिकार समझता है । कदम-कदम पर बार-बार अछूतों के संपर्क से भ्रष्ट होनेवाला ‘महान’ धर्म ऐसे जातीय संसर्ग के समय क्यों अखंड रहता है ? सुलझे हुए कवि डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने इन्हीं प्रश्न को इस प्रकार रखा है -

" जब जवान अछूत कन्या रूपी / के साथ बलात्कार किया तुमने
तुम्हारा धर्म उस समय कहाँ था / जब रूपो की माँ ने दाई बनकर
जन्मा था तुम्हें / और नहलाया था सबसे पहले / अपने हाथों से । तुम्हारा
धर्म अभी तक भ्रष्ट क्यों नहीं हुआ ? " [41]

भले ही दलित पुरुष अपनी अनगिनत विवशताओं के कारण नारी उत्पीड़न का मूक प्रेक्षक बना रहा हो , लेकिन कुछ नारियों ने इस अत्याचार के सामने विद्रोह किया है । केवल विरोध ही नहीं उनको मुँह तोड़ जवाब दिया है । उच्चवर्गीय समाज के खिलाफ़ प्रतिशोध की ज़ेहाद छेडनेवाली महिलाओं ने दलित समाज में नवचेतना की चिंगारी प्रज्वलित की है । नारी सुकोमल अबला ही नहीं लेकिन समय आने पर वह रणचंडी बनकर विध्वंश भी कर सकती है इसका एहसास दिलानेवाली ऐसी जानीसार महिलाएँ ही दलित शोषित समाज का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ है , इसीलिए डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने कहा है कि –

" फूलन / दलित शोषित समाज का / प्रतीक है
चाहे उसे , कितना ही बदनाम करो / तोहमत धरो / वह / हमारी ही नहीं
सारी नारी जाति की / शौर्य गाथा है / वह / गर्व से उन्नत
हमारा माथा है / उसने दलित शोषित समाज को
अबला / नारियों के सुराग को / एक आदर्श दिया है
स्वयं की प्रतिशोध की अग्नि में / जलकर / वीरता का
मार्ग प्रशस्त किया है । " [42]

दलित नारियों ने सदियों से स्थापित गलत मूल्यों को इस प्रकार अपने जीवन में स्वीकार कर लिया है , जैसे वही उसकी नियति है । उसका निर्वाह करना ही उसने अपना जीवनकर्म बना लिया है । सदियों से दलित नारी की ऐसी दबी हुई , पिछड़ी हुई स्थिति का यथार्थ चित्रण वरिष्ठ कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविता 'झाडूवाली' में ' रामेसरी ' के पात्र के द्वारा किया है -

" सुबह पाँच बजे / हाथ में थामे झाड़ू / घर से निकल पड़ती है ।
'रामेसरी' / लोहे की हाथ - गाडी धकेलते हुए
खडंग-खडंग की कर्कश आवाज़ टकराती है / शहर की उनींदी दीवारों से ।
रामेसरी के हाथ में थमी बाँस की मोटी झाड़ू
सड़क के ऊबड-खाबड़ सीने पर / श्र- श्र की ध्वनि से तैरती है
उड़ाती है धूल का गुबार / धूल जो सैकड़ों / वर्षों से / जम रही है पर्त-दर-पर्त
फेफड़ों में रामेसरी के / रंग रही है श्वास नली को / चिमनी-सा । " [43]

दलित साहित्य में नारी की संकल्पना विस्तृत है वह केवल दलित या अछूत नारियों की ही वेदना को शब्द नहीं देता , अपितु उन सारी नारियों की पीडाओं का जीवंत दस्तावेज़ है , जो युगों-युगों से शोषित होती रही हैं । और यही बात दलित साहित्य की संकीर्णता के बारे में फैली भ्रमणाओं को ध्वस्त कर देती है । दलित साहित्य में प्रत्येक 'दलित' नारी की आह-कराह मिलती है ।

आधुनिक समाज में भी नारियों का दलन कम नहीं हुआ है । आये दिन स्त्री-शोषण की खबरें अख़बार के पन्नों पर देखने को मिलती हैं । उनमें भी गरीब महिलाओं की स्थिति तो और कष्टकर है । कवि मंसाराम विद्रोही ने इस स्थिति का चित्रांकन कुछ ऐसे किया है -

" सखी री ढो तू गारा ईंट ।/ बनिया,बामन री बेटी, ढोई कहीं क्या ईंट ?
खन्ती खोदति मिलैं कहीं क्या , पहिनी किनारी छींट ।
हो मजदूरन क्षत्रि की बेटी , तनय चिथड़ा चीट ।
करूँ गुलामी सखी तुम्हारी , मुझको देना पीट । " [44]

आर्थिक समृध्धि की गुलबाँगे हाँकता हुआ झूठे अभिजात्य के बोझ तले दबा आधुनिक शिक्षित कूपमंडूक-सा हमारा विवेकहीन समाज लड़कियों पर हो रहे अत्याचारों से विचलित नहीं होता । आज भी भारतीय समाज में लड़कों से कहीं अधिक पाबंदियाँ लड़कियों पर लगायी जाती है । युगीन मूल्यों का विस्तार अभी तक संभ्रांत महिलाओं तक ही सिमित है । ऐसी स्थिति में दरिद्र दलित स्त्री का जीवन यातनाओं का पर्याय न बन जाए तो आश्चर्य की बात कही जा सकती है । समता एवं 'क्षमता' के अभाव में आज भी दलित स्त्री, जातीय एवं पुरुषीय दोहरे आक्रमणों का शिकार हो रही है । कवि बेचैन ने नारी की इस स्थिति को शब्द दिये हैं -

" यह औरत / यह मजूरिनी औरत / यह औरत / यह भिखारिनी औरत
राजधानी की / गंदी बस्ती में / बेच देती है / अपने जिस्म का
पाकीज़ापन / पेट की आग में / यानी कि / तंगदस्ती में । " [45]

औरत का जीवन एक विभीषिका है , जो कदम-कदम पर प्रताड़ित होती रही है । नारी की दारुण-दास्तान , उसका आर्त क्रंदन एवं उसकी वेदना उसके संपूर्ण जीवन के दौरान उसे दलित और दमित होने का एहसास दिलाती रहती है । दलित कवियों ने नारी विषयक प्रश्नों को काफ़ी गंभीरता से उठाया है । उनके नारी चरित्र चित्रणों ने नारी-दशा के परिवर्तन की आवश्यकता को मुखर अभिव्यक्ति दी है । नारी-दशा का मार्मिक चित्रण कविश्री बेचैन ने इस प्रकार किया है -

" बंदिश भरा है बचपन / बोझिल सी जवानी है / औरत की गुलामी भी
एक लम्बी कहानी है / तालीम में कमतर है / बाहरी हवा ज़हर है
लड़का कहीं भी जाए / उस पर कड़ी नज़र है /उसे जान गँवाकर भी
हर रस्म निभानी है / औरत की गुलामी / एक लम्बी कहानी है । " [46]

आज के विकसित एवं शिक्षित भारतीय समाज में भी स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार कम नहीं हो रहे हैं । दिल्ली का निर्भया केस हो या बदायूं का बलात्कार आज पूरे भारत में नारियों की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है । राजनेता इन

सब के बीच अपने वोट बैंक की चिंता में मनगढ़त एवं विवेकहीन तथा अशोभनीय निवेदनों का प्रदुषण फ़ैला रहे हैं । भारत की ऐसी शर्मनाक हालत को कवि कर्मशील भारतीने कटाक्ष भरे शब्दों में दर्ज किया है , और प्रश्नचिन्ह लगाया है देश के विकास पर - " भारत आज भी / जंगली युग में जी रहा है / स्त्री और दलित की अस्मिता पर हमला हो रहा है / कर्मशील मानव , नित नये अपमान के आँसू पी रहा है । " [47]

कहते हैं उम्मीद पर दुनिया कायम है । और यही उम्मीद का अमृत मृतःपाय मानवता को जीवित रखे हुए है । देश में हो रहे ऐसे अमानवीय आचरण की समाप्ति की कामना हर एक मनुष्य को करनी चाहिए । आशा रखनी चाहिए कि भारत में भी कभी समानता एवं सदभावना का सूरज निकलेगा । नारी प्रताड़न की और चिंता जताते हुए कवि बेचैन ने भी ऐसे सभ्य भारत का सपना संजोया है , जहाँ मानवता ही सर्वोपरि है - " यह भुखमरी / नहीं रहे / ये ख़ुदकुशी नहीं रहे / नारियों के देह की

तस्करी नहीं रहे / मनुष्यता / की भावना / प्रबल घनी बनी रहे ।

चमन बना रहे / चमन की / स्वामिनी बनी रहे । " [48]

इस विवेचन के आधार पर हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि दलित कविताओं ने नारी विषयक त्रासदियों का यथार्थ चित्रण किया गया है । दलित कवियों की यथार्थप्रियता ही उनकी रचनाओं को सार्थक सिध्ध करती है , और पाठकों के दिलों में उद्वेलन पैदा करती है ।

5.2 धार्मिक समस्याएँ

मानव के लिए धर्म सर्वोपरि होता है । वह धर्म को जीता है । धर्म लोककल्याणकारी एवं उदार होता है , जो भटके हुए को सही राह दिखाता है । धर्म के आलोक में मानव सुकृत्य एवं कुकृत्य का भेद पहचानता है और सुकृत्यों को अपनाकर अपना जीवन सफल एवं सार्थक करता है । प्रश्न यह उठता है कि यदि धर्म इतना कल्याणकारी है तो वह मानव जीवन की समस्याओं का उदभावक कैसे हो सकता है ? निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि धर्म एवं धार्मिकता का विकृत ,

स्वार्थी एवं संकुचित अर्थघटन ही मानव जीवन को समस्याओं से भर देता है । इस विषय में मेरे निर्देशक डॉ.एन.एस.परमार साहब कहना है कि - " प्रायः देखा गया है कि धर्म संकीर्ण , साम्प्रदायिकता और कभी-कभी तो अधार्मिक अभिगम को धारण करनेवाला दृष्टिगोचर होता है । ऐसी स्थिति में वह मानवीय संकट एवं समस्याओं में अभिवृद्धि ही करता है । धर्म जब बाह्याचारों एवं बाह्य अनुष्ठानों में कैद होकर रह जाता है तो वह सड़ने लगता है और उसकी यह सडाँघ मानव समाज में भी सडाँघ पैदा करने लगती है । " 49

धर्म का स्वकेन्द्री एवं मनगढ़ंत अर्थघटन उसके स्वरूप को विकृत कर देता है । और इसीलिए धर्म का ऐसा संकीर्ण , अनुदार एवं अमानवतावादी अभिगम धर्म के खिलाफ़ विद्रोह को चिंगारी देता है । धर्म का सही स्वरूप क्या है ? क्या है वह मानवतावादी और उदार तत्व जिसे धर्म की संज्ञा दी गयी है ? इन प्रश्नों के उत्तरार्थ धर्म विषयक कतिपय परिभाषाओं पर विचार करना आवश्यक जान पडता है ।

महाभारतकार व्यासजी ने धर्म के रहस्य को उदघाटित करते हुए धर्म का सरलीकरण कर दिया है - " अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनंद्वयम् ।

परोपकारः पुण्याय पापायपरपिडनम् ।। " 50

अर्थात् अठारह पुराणों का निचोड़ यही है कि दूसरे का हित करना ही धर्म है और दूसरे को पीड़ित करना अधर्म है । गोस्वामी तुलसीदासजी ने इसी बात को लोकभोग्य बनाया है -

" परहित सरसि धरम नहीं भाई । / परपीड़ा सम नहिं अधमाई । " 51

चीनी तत्वचिंतक कन्फूशियस का कथन है कि - " गंभीरता , उदारता , विश्वस्तता , तत्परता तथा दयालुता का व्यवहार ही सच्चा धर्म है । " 52

दक्षिण के प्रसिद्धि संत कवि तिरुवल्लुवर भी बाहरी आडंबरों और ढोंग की अपेक्षा मन की निर्मलता और पवित्रता पर ज़ोर देते हैं । उनका कहना है कि - " मन निर्मल रखना ही धर्म है , बाकी सब कोरे आडम्बर है । " 53

धर्म के स्वरूप एवं धार्मिक आचरण की व्याख्या को सरलीकृत करता हुआ एक और विचार महाभारत में मिलता है कि -

" श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत ।। " [54]

अर्थात् जिसे तुम अपने लिए नुकसानदेह और दुःखदायी समझते हो वह दूसरों के साथ भी मत करो । सामनेवाले के स्थान पर अपने आप को रखकर अपने व्यवहार की समुचितता का जायजा लेना चाहिए । धार्मिक बाह्याडंबरों का विरोध करते हुए स्वामी विवेकानंद ने भी कहा है कि - " The only god to worship is the human soul in the human-body. of course, all animals are temples too , but man is the highest , the Taj-mahal of temples , if I can not worship in that , no other temple will be of any advantage." [55]

अर्थात् मनुष्य के शरीर में जो अंतरात्मा है , वही ईश्वर है । सभी प्राणियों का शरीर ईश्वर-मंदिर है , लेकिन मानव शरीर इन सब में सर्वोत्तम मंदिरों का ताजमहल है । यदि मैं उसकी पूजा न कर सका तो दूसरा कोई भी मंदिर मेरे लिए उपयोगी नहीं है । इस प्रकार अनेक महापुरुषों ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को व्याख्यायित किया है । परंतु इससे विपरीत आज धर्म का स्वरूप विकृत हो गया है । धर्म के बाह्याचारों एवं आडंबरों को ही धर्माचार बना दिया गया है । और इसीलिए धर्म की आड़ में अनेकानेक दुराचारों एवं विद्वेषों को जन्म दिया जा रहा है । नोबत तो यह आ गयी है कि कवि श्री हरिवंशराय बच्चन को लिखना पड़ा कि -

" मंदिर-मस्जिद बैर बढ़ाते ।

मेल कराती मधुशाला ।। " [56]

धर्म के नाम पर हो रहे रक्तपात को बेकल उत्साही साहब ने इस प्रकार देखा है -

" हम कहीं हिन्दू कहीं मुस्लिम बने बैठे रहे

धर्म के चौपाल पर सारा वतन जलता रहा । " [57]

धर्माचारो के अतिरेक ने जूनून का रूप धारण कर लिया जिसका परिणाम अयोध्या में 6 दिसम्बर 1992 को मिला , जब बाबरी मस्जिद को ढहाया गया । इस संदर्भ में डॉ. पारुकान्त देसाई का एक शेर ध्यातव्य है -

“ मंदिर तेरा टूट गया है , मस्जिद तेरी टूट गई है ।
हिन्दू-मुस्लिम बाँट रहे हैं , मानवता का मलबा-मलबा ” [58]

इसी क्रम में उनका एक और दोहा भी मिलता है -

“ कबीरा तू कुछ भी कहे , हुआ अनुचित काम
टूटा निकेतन रहीम का , रोते होंगे राम ।। ” [59]

धर्म को बलात् उसके कल्याणकारी पथ से भ्रष्ट कर दिया गया तथा उसे स्वार्थी एवं संकुचित विचारधारा में कैद कर लिया गया , यही कारण है की उसका लोकमंगल स्वरूप नष्ट हो गया । मेरे निर्देशक डॉ.एन.एस.परमार साहब के विचार हैं कि - “ सभी धर्मों की प्रतिगामी ताकतों (Fundamentalist) ने धर्म को मानव कल्याण के मार्ग से विच्युत् करके उसे विपरीत दिशा में मोड़ दिया है । समता और न्याय के स्थान पर उसमें विषमता के बीज बो दिये गए हैं । धर्म के ठेकेदारों द्वारा रचित शास्त्रों ने शोषण की ही बुनियाद पर शर्म के भवन का निर्माण किया है । परिणाम यह हुआ है कि धर्म सबलों के हाथों में हथियार के मानिंद आ गया । धर्म के साथ प्रभुवर्ग का गठबंधन हो जाने से शोषण का यह शस्त्र और भी पैना और जानलेवा हो गया । धर्म के नाम पर जो कपोल-कल्पित बातें प्रचारित हुईं , उससे प्रेरित होकर हमारे यहाँ बहुत बड़े वर्ग के साथ अमानुषी व्यवहार होता रहा । ” [60]

इस प्रकार धर्म को ढाल बनाकर त्रिवर्णों ने दलितों पर जघन्य अत्याचारों की झड़ी लगा दी । अतः जो धर्म मानव का त्राण करता है वही धर्म दलितों के दुःखों का कारण बना । दलित साहित्य में इस प्रकार के धार्मिक शोषण का बेबाक चित्रण मिलता है । समकालीन दलित कवि भी इन धार्मिक त्रासदियों के भोक्ता रहे हैं, अतः उनकी रचनाओं में धार्मिक शोषण की अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक ही है ।

" ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहु राजन्यः कृतः
उरु तदस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रों अजायत । " (ऋग्वेद १०.१०.१२)

ऋग्वेद के उपरोक्त श्लोक ने शूद्रों के जीवन में यातनाओं का अंबार लगा दिया । पाँव से उत्पन्न मानकर इनके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया गया । मानव प्रजनन का यह शायद पहला और अंतिम वैचित्र्य था कि मानव योनि से नहीं लेकिन ब्रह्मा के शरीर के अलग-अलग अंगों से कूद पड़े । कोई मुख से , कोई हाथ से , कोई पेट से सीधा उछलकर निकल पड़ा । अगर देखा जाए तो यह मान्यता ही तर्कहीन एवं मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती है । दूसरा यदि देखा जाए तो पैर शरीर का महत्वपूर्ण अंग है । पैरों के बिना बाकी सब अंग असहाय बन जाते हैं । इस दृष्टि से पैर समग्र शरीर का संचालक कहा जा सकता है , क्योकिं पैर की वजह से ही शरीर एक जगह से दूसरी जगह जा सकता है , गति कर सकता है । लेकिन सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि उन पैरों से जन्मे लोंगों को अत्यंत तुच्छ एवं निकृष्ट मान लिया गया और उनका अधिकारपूर्वक शोषण किया गया । शूद्रों के जन्म स्थान को लेकर प्रचलित मान्यताओं पर प्रहार करते हुए कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने प्रश्न किया है कि -

" तुमने कहा / ब्रह्मा के पाँव से जन्मे शूद्र / और सिर से ब्राह्मण
उन्होंने पलटकर नहीं पूछा / ब्रह्मा कहाँ से जन्मा ? " [61]

धर्म की आड़ में चल रहे शोषण और अत्याचार के इस खतरनाक खेल का पर्दाफाश दलित कवि मोहनदास नैमिशराय ने बहुत ही कठोर शब्दों में किया है । उनहोंने उस बर्बरतापूर्ण इतिहास को बेनकाब कर दिया है , जिस पर उच्चवर्ग गर्व महसूस करता आया है ।

" तुम्हारी महान संस्कृति के इतिहास में तो / व्यभिचार की अनगिनत घटनाएँ हैं
देवदासियों की दर्दनाक चीखें हैं / और तुम्हारे कामुक अट्टहास्य
अब तुम यह भी नहीं कह सकोगे / कि तुम ब्रह्म के मुख से

और हम उस साले ब्रह्म की टाँगों से पैदा हुए /
जिसने अपनी बेटी के साथ बलात्कार किया था । " [62]

धर्म प्रभुवर्ग के लिए शोषण का एक पैना एवं सुलभ साधन बनकर रह गया है । धार्मिक आडम्बरों ने समाज को इस तरह जकड़ लिया है कि, शिक्षित व्यक्ति भी , जो कभी-कभी कानून की कमियों का फ़ायदा उठा लेता है , धर्म के खिलाफ़ जाने से डरता है । ब्राह्मणों ने पूर्वजन्म और अगले जन्म का भ्रामक जाल फैलाकर दलितों के वर्तमान जीवन को नरक बना दिया है । पूर्व जन्म के पापों की वजह से तू शूद्र है और यदि इस जनम में धर्म का चुस्ती से पालन करके हमारी सेवा-सुश्रूषा में जीवन समर्पित कर देगा तो निश्चित ही अगले जनम में तुझे सुखों की प्राप्ति होगी । इस प्रकार की बे-सिर-पैर की बातों में लपेटकर दलितों से मनमाने शोषण की स्वीकृति प्राप्त कर ली जाती है । उसे धर्म में निष्ठावान बनने की हिदायत दी जाती है । लेकिन आधुनिक शिक्षित दलित ऐसी बातों में नहीं आता वह तर्क से काम लेता है और उचित-अनुचित का निर्णय करता है । कवि अशोक भारती ने अपनी कविता ' निष्ठावान ' में कुछ ऐसे ही तथ्यों को चित्रित किया है -

" मैं क्यों निष्ठावान बनूँ / तुम्हारे प्रपंच का / यज्ञ का / कर्मकांड का
अतीत के महिमागान का ? मैं क्यों निष्ठावान बनूँ
तुम्हारे षडयंत्र का / स्वर्ग का / नरक का / मानवता के बेडागर्क का ?
में क्यों निष्ठावान बनूँ / तुम्हारे विधान का / स्मृतियों का / शास्त्र का
मानवता के स्मशान का ? " [63]

धर्मशास्त्रों के आदेशानुसार अधिकार पूर्वक दलितों का ताड़न हो रहा है । वेद-पुराणों को ढाल बनाकर , उसमें लिखे गए मनगढंत सूत्रों को धार्मिक आदेशों का नकाब पहनाकर सदियों से दलितों की अस्मिता को रौंदा जा रहा है । दलितों की नारकीय अवस्था को धर्म संमत बताकर उन्हें उसी अवदशा में रखने का भयंकर षडयंत्र रचा गया है । धर्म के आदेशानुसार उनका वध करना भी उचित बताया

जाता है । कवि श्री कंवल भारती ने सवर्ण समाज से इसी संदर्भ में प्रश्न करते हुए लिखा है कि -

" यदि रामायण में राम / तपस्वी-धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का करते कत्ले आम
तुलसीदास मानस में लिखते / पूजिए शूद्र सील गुन हीना
विप्र न गुन जन ग्यान प्रवीना / तब , तुम्हारी निष्ठा क्या होती ? " [64]

दलितों के लिए वेद-पुराणों का पठन तो वर्ज्य था ही लेकिन गलती से अगर कोई मंत्रोच्चार उसके कानों तक पहुँच जाए तो भी उसके कानों में पिघला हुआ शीशा भर देने की 'व्यवस्था' भी धार्मिक सूत्रों में मिलती है । अर्थात् प्रभु की भक्ति या आराधन तो वह नहीं ही कर सकता था, लेकिन किसीको आराधन करते हुए देख लेना भी जैसे एक महापाप था उसके लिए । ऐसी स्थिति में शंबूक ने 'रामराज्य' में तपस्या करने का 'घोर महापाप' कर दिया तब राम ने उसका वध करके इस धरती को 'प्रलय' से बचाया । तपस्या में लीन एक तपस्वी की क्रूरता पूर्ण हत्या होने पर भी ईश्वर जैसे की खुश हुआ और हत्यारे राम पर प्रशंसा के पुष्पों की वर्षा की । दलित इस प्रकार के सांस्कृतिक शोषण का भोग बनता आया है । हमारा धार्मिक , सांस्कृतिक एवं सामाजिक इतिहास इस प्रकार के शोषण का सबूत है । इस प्रकार के भावात्मक शोषण के खिलाफ़ दबंगई कवि ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने आवाज़ उठाई है और तर्कपूर्ण प्रश्नों से इन शोषणों का पर्दाफार्श किया है ।

" पूछेंगे सवाल रूँधे हुए शब्द / क्यों नहीं आयी बाढ़ गंगा में ।
क्यों नहीं उठकर बैठ गया अधजला मुर्दा / क्यों नहीं उमड़ा चक्रवात
महासागर की विस्तृत लहरों पर ।
जब पुष्प वर्षा की थी देवताओं ने तपस्वी की हत्या पर । " [65]

दलित शम्बूक की तपस्या से धरती पर प्रलय आ गया था, सारे ब्राह्मण बालक एक-एक कर मरे थे , अर्थात् शम्बूक की तपस्या करके ज्ञान प्राप्ति करना जैसे सवर्णों के धार्मिक एकाधिकार पर हमला था । यदि दलित शम्बूक ज्ञानी बन जाता

तो ब्राह्मणों का भावि धुँधला बन जानेवाला था । वह वेदों द्वारा प्रस्थापित समाज व्यवस्था को उलटने का प्रयास कर रह था , इसीलिए उसका वध हुआ और झूठे ब्राह्मणत्व की रक्षा की गई । कवि कँवल भारती ने इस उपक्रम में लिखा है कि –

" शम्बूक (हम जानते हैं) / तुम उलटे होकर तपस्या नहीं कर रहे थे
जैसे की वाल्मीकि ने लिखा है / तुम्हारी तपस्या एक आंदोलन थी
जो व्यवस्था को उलट रही थी । "

* * * * * * * * * *

शम्बूक (हम जानते हैं) / तुम्हारी तपस्या से / ब्राह्मण का बालक नहीं मरा था , जैसा कि वाल्मीकि ने लिखा है / मरा था ब्राह्मणवाद /मरा था उसका भवितव्य। [66]

शम्बूक का वध समाज में जागी हुई दलित चेतना का वध था । दलितों के ऊपर उठने के प्रयास का खूँखार विरोध था । शायद दलितों के इस दमन से देवगण भी प्रसन्न होकर इसकी मूक संपति दे रहे थे ।

" शम्बूक / तुम्हें मालूम नहीं / तुम्हारे वध पर /देवताओं ने पुष्प-वर्षा की थी ।
कहा था - बहुत ठीक , बहुत ठीक / क्योकिं तुम्हारी हत्या
दलित चेतना की हत्या थी / स्वतंत्रता , समानता और न्यायबोध की हत्या थी।" [67]

भारत का समूचा धार्मिक अतीत दलित-दमन के अध्यायों से भरा हुआ है । धर्म की दुहाई दे-देकर शूद्रों को मानवोचित जीवन जीने का अधिकार भी नहीं दिया गया । सामंती एवं प्रभुवादी व्यवस्था ने धर्म को अपने अहंकार एवं स्वार्थ की दीवारों में कैद कर लिया था । और एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण किया था जिसको तोड़ना, शायद भगवान के बस में भी नहीं था । धरती से अधर्म और अत्याचार को मिटाने का वादा करनेवाला भगवान इस अधर्म और अत्याचार के सामने मूक , विवश एवं लाचार प्रतीत होता आया है । परमात्मा की इस पामरता का राज़ स्पष्ट करते हुए कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकिजी ने लिखा कि –

" राम और कृष्ण पृथ्वी के अधर्म मिटाने आए थे /
जिन्होंने शम्बूक और कर्ण को नोंचा था / तब किसीने यही नहीं सोचा था,
कि राम और कृष्ण भी उसी व्यवस्था के प्रतीक हैं / जो अन्याय और शोषण में
छल से और / कपट से सदैव विजयी हुई है । " [68]

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने ऐसे प्रपंची एवं कायर कृष्ण के अस्तित्व पर ही प्रश्न उठाया है ।उनका मानना है कि कृष्ण सवर्ण समाज का एक मनगढंत चरित्र है , जिसे अपने स्वार्थों के हेतु शास्त्रों में चतुराई से फिट कर दिया गया है । यह वही 'परम कृपालु परमात्मा' है जिसके आदेश से अबोल पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है और 'बोलते हुए पशुओं' पर अमानवीय अत्याचार किया जाता है । भारतीय संस्कृति की ऐसी संकीर्णताओं को कवि ने कुछ इस प्रकार चित्रित किया है -

" यज्ञों में पशुओं की बलि चढ़ाना / किस संस्कृति के प्रतीक हैं /
मैं नहीं जानता / शायद आप जानते हो ! / अर्थ बदलकर शब्दों के
गढ़ लेना असंख्य प्रतीक / ऋग्वेद के कृष्ण को / महाभारत में फिट करके
हो जाना आत्म विभोर / सो जाना गहरी नींद में / देख नहीं पाना सपनो में
* * * * * * * * * *
संस्कृति और संस्कृत में / क्या सम्बन्ध है / मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हो । " [69]

कवि ने सवर्ण समाज को सतर्क किया है कि तुम्हारी बनायी यह परंपराओं के साँप तुम्ही को डँस लेंगे । क्योकिं इस पारंपरिक निर्योग्यताओं ने ही दलित समाज में विद्रोह की चिंगारी को जन्म दिया है , यह आक्रोश और विद्रोह की आग में तुम्हारा ये तीनमंजिला महल राख हो जाएगा । तुम्हारी चाल तुम पर ही उलटी पड़नेवाली है , इसलिए - " गंगा किनारे / कोई वट वृक्ष ढूँढकर / भागवत का पाठ कर लो
आत्मतुष्टि के लिए / कहीं अकाल मृत्यु के बाद / भयभीत आत्मा
भटकते-भटकते / किसी कुत्ते या सूअर की मृत देह में / प्रवेश न कर जाए
या फिर पुनर्जन्म की लालसा में / किसी डोम या चूहड़े के घर
पैदा न हो जाये ! " [70]

दलितों को धर्म के आस्था-स्थानों से दूर रखा गया है । इनके संपर्क से इन पवित्र स्थलों की शुचिता नष्ट होने का खतरा रहता है । जब कि वही मंदिर बनाने में दलित अपना खून-पसीना बहा देता है । जिंदा इन्सानों के संपर्क से देवालय में रखा 'पत्थर', जिसकी त्रिवर्ण पूजा करता है, भ्रष्ट हो जाता है, अपवित्र हो जाता है । ऐसी मुर्खतापूर्ण मान्यता के चलते दलितों पर मंदिर प्रवेश की मनाही थी । इसीलिए उच्चवर्ग ने अपने काले धन से बनाए हुए इन देवस्थानों के प्रति दलितों को विरक्ति हो गई है -

" ये मंदिर / ये धर्मशालाएँ / इनमें / धन लगा है काला
हमारे किस काम की हैं / रे पुजारी , ओ चौकीदार
हमको क्यों करता है बाहर / इनकी एक-एक इँट / हमारे / खून से सनी है । " 71

ऐसी काली कमाई से बने हुए देवालयों में दलित-प्रवेश वर्जित है । ऐसा शायद इसलिए की खून-पसीने की कमाई खानेवाला यह दलित शायद वहाँ जाकर 'अपवित्र' और भ्रष्ट हो जाएगा । दलित मानता है कि ऐसे भवनों में हमको नहीं जाना चाहिए क्योकिं वह बेईमानी से कमाये हुए धन से निर्मित है । डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर इसी उपक्रम में लिखते हैं कि -

" काली कमाई का / यह काला मन्दिर है / तू क्यों दुःखी होता है रे
जब तेरा प्रवेश वर्जित है इन काले भवनों को / उनका ही रहने दो ।
जिनकी नींव ही / पाप और शोषण पर खड़ी है । " 72

दलित अपने पर हो रहे धार्मिक अत्याचारों से त्रस्त है । शायद यही वजह है कि दलित ईश्वर को नकारता है , क्योकिं ईश्वर के वह करुणामय और भीडभंजन रूप का कभी उसे साक्षात्कार नहीं हुआ । हिन्दू देवता इनके लिए ऐसे शैतान बने रहे जिनके आदेशों के कारण उनका जीवन कष्टमय बन गया । यही कारण है कि दलित साहित्य में ईश्वर-भगवान को अत्यंत नीच एवं निदर्यी बताया गया है । एक भजन में हिन्दुओं के देवताओं के कुकृत्यों को दिखाया गया है । -

" विष्णु ने विंदा संग छल कीन्हा , इन्हे प्रधान बनाते हो ,
कर्ण भए क्वांरी के पैदा फिर भी नहीं शरमाते हो ।।
अहल्या संग इन्द्र जो कीन्हा , कौन नहीं वह जाने ? " [73]

मनु दलित समाज का सबसे बड़ा शत्रु माना जाता है । उसीने वेदों-पुराणों के कथनों की मनगढंत व्याख्या करके अपने ग्रंथ 'मनु स्मृति' को दलित का पीड़ा ग्रंथ बना दिया । मूर्ख एवं संकीर्ण हिन्दू समाज मनु की इस ख़ुराफात का मुस्तैदी से पालन करता रहा है । दलितों के त्रासदीदाता मनु को डॉ. सुमनाक्षर ने आड़े हाथों लिया है - " मनु / मनुस्मृति का रचयिता / हमारा दुश्मन था

हिन्दू समाज का नाशक था / देशद्रोही था / उसने / मनुस्मृति का
ज़हरीला विधान बनाया / पूरे हिन्दू राष्ट्र को / उसमें डुबाया
हिन्दू समाज को टूकड़ों में बाँटा / उसने कमजोर बनाया
राष्ट्र एकता को / वर्ण जाति / और वर्गों में बाँटकर / छिन्न भिन्न कराया
यह सब उसी की करामात है । " [74]

धर्म तो जन कल्याण के लिए होता है , लेकिन यही धर्म जब मनुष्यों के जीवन में विष धोल दे तो उस धर्म से विरक्ति होना स्वाभाविक ही है । हिन्दू धर्म ने दलितों की जो दुर्दशा की , जो शोषण किया वह अनन्य है । संसार का कोई भी धर्म मानवों को इतना तिरस्कृत और उपेक्षित नहीं मानता है । धर्म के बाह्याडंबरों और ढकोसलों ने हिन्दू धर्म को 'प्रदर्शनीय' बनाया और इसके विपरीत उन्हीं ढकोसलों ने एक बड़े सर्वहारा समूह को , जिसे सहायता और और त्राण की ज्यादा जरूरत थी , उसे ही बर्बरतापूर्ण यातनाओं की गर्ता में धकेल दिया । इसलिए दलित के सामने धर्म का विकृत रूप ही आया , धर्म का सच्चा स्वरूप उसकी आँखों से ओझल ही रहा । इसलिए उसके मन में बार-बार प्रश्न उठता है कि -

" धर्म एक ढकोसला है / ईश्वर झूठ / जो, तथाकथित धर्मगुरुओं के कंधों पर
बैठकर / आदमी को नकारता है / ईंट-पत्थर जोड़कर बनाया गया

मकबरा जहाँ ईश्वर नहीं / धर्मगुरुओं का अहंकार / सुबह शाम
छल-प्रपंच का नाटक खेलता है / बाहर खड़ा आदमी
निर्निमेष देखता है आकाश को / सोचता है / यह कैसा धर्म है ? " [75]

सुयोग्य एवं ज्ञानी दलित को भी अपनी जाति की वजह से अयोग्य एवं बूद्धु सवर्णों की सेवा करनी पड़ती है। वह सब कार्यो के लिए सक्षम होते हुए भी अपनी क्षमता एवं ज्ञान के अनुरूप कार्य नहीं कर पाता , क्योकिं वह अछूत है। इसी छुआछूत के कारण उसके जीवन की महत्वाकांक्षाएँ और सपने भी अछूते एवं अधूरे रह जाते हैं। सवर्णों ने दासता को ही उनका एकमात्र धर्म कार्य बना रखा है। ऐसी समाजव्यवस्था का मार्मिक चित्र डॉ. सुमनाक्षर ने खींचा हैं।

" जी हाँ, इनमें बुध्धि भी है / बल भी है , और छोटे से छोटे
काम को करने की शक्ति भी है / पर उन महाजनों ने / धर्म की दुहाई देकर
सदा यही कहलवाया है कि / 'तुम अछूत हो' और अछूत / का काम सिर्फ,
हमारी सेवा करना है / तुम नीच हो , सभी
नीच काम करना ही तुम्हारा / धर्म है। " [76]

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि धर्म के कारण दलितों के जीवन में नाना प्रकार की समस्याएँ उनका उत्पीड़न करती रही हैं। और इसी धार्मिक उत्पीड़न को दलित कविता साहित्य में यथायोग्य स्थान दिया गया है। दलित कविताओं में दलित जीवन की इन धार्मिक विडंबनाओं का यथार्थ चित्रण किया गया है।

5.3 आर्थिक समस्याएँ

दलित जातियों की लाचारी एवं निष्प्राणता का प्रमुख कारण उनकी गरीबी ही रही है। हजारों वर्षों के इतिहास में अनेकानेक कारणों से उनकी आर्थिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया। आर्थिक निर्योग्यताओं के संदर्भ में आज का युग बहुत ही अच्छा समझा जाएगा , क्योकिं आज का दलित पैसे कमा सकता है और उसे मन चाहे ढंग से खर्च भी कर सकता है। ज़मीन-जायदाद और गहने भी खरीद

सकता है । लेकिन अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय समाज में दलितों पर अनेक प्रकार की आर्थिक निर्योग्यताएँ लाद रखी थीं, जिसके कारण वह जीवन भर आजीविका के लिए उच्च वर्णों पर निर्भर रहा करता था और आर्थिक अभावों में वह अपने सपनों की बलि चढ़ा देता था। धन या पैसा मानव जीवन की अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकता है, क्योकिं पैसे से ही वह अपने लिए जीवन की सुख-सुविधाओं को खरीद सकता है । रोटी-कपड़ा और मकान जैसी प्राथमिक आवश्यकताएँ भी धन के द्वारा ही पूरी की जा सकती है इस विषय में डॉ.एन.एस.परमार के विचार है कि - " किसी भी वर्ग या जाति की गतिविधियाँ अर्थ-सत्ता के द्वारा ही निश्चित एवं नियंत्रित होती रहती हैं । "सर्वेगुणाः काञ्चनम् आश्रयन्ते" या "समरथ को नहिं दोष गुसाई" जो कहा गया है , उसके पीछे अनुभव का निचोड़ है । " [77]

आज के समय में शहरों की अपेक्षा गाँव में नाना प्रकार से खेतिहर मजदूर वर्गों का शोषण किया जाता है , कहने की आवश्यकता नहीं कि यह मजदूर ज्यादातर दलितवर्ग से ही होते हैं । उनसे बिना पारिश्रमिक दिये मजदूरी करवाई जाती है जिसे बेगार कहा जाता है । पूरे दिन भर जी तोड़कर महेनत करने के बाद रात को भूखा सोना पड़े यह कल्पना ही दिल दहलाने वाली है । जमीनदारवर्ग इन मजदूरों का आर्थिक शोषण करते हैं । गौरतलब बात यह है कि दोनों वर्ग एक दूसरे की ज़रुरत है । जमीनदारों को खेत में काम करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता है , तो यह सर्वहारा वर्ग अपने जीवन की अनेकानेक आवश्यकताओं के लिए उच्चवर्ग पर निर्भर है । ग्रामीण समाज में आर्थिक शोषण की तीव्रता बहुत ही अधिक है , इसकी वजह से काफ़ी सारे श्रमिक शहरों में रोजी-रोटी की तलाश में चले आते हैं । शहरों में आर्थिक विषमता का स्तर बहुत अधिक है, अत: गाँव से आनेवाला दलित लघुताग्रंथि के भयानक बोझ तले दब जाता है । रोजी-रोटी और सुरक्षा की तलाश में वह दर-दर की ठोकरें खाता रहता है और दो वक्त की रोटी जुटाने में ही अपना जीवन व्यतीत कर देता है ।

दलित जीवन की ऐसी आर्थिक समस्याओं को दलित कवियों ने अपनी रचनाओं में उकेरा है और दलितों की आर्थिक दुर्दशा का तादृश चित्र पेश किया है। डॉ. सुखवीर सिंह ने गाँव के खेतिहर मजदूर का ह्रदयस्पर्शी चित्रांकन किया है -

" ओ मेरे गाँव ! तू गवाह है कि तेरी गोद में पलते हुए ,
वक्त से पहले ही , उनके हाथों से खिलौने छूट जाते हैं।
कुछ बच्चों के स्वप्न पूरे होने से पहले ही टूट जाते हैं।
खुल जाती हैं आँखें एक भयावह काँटेदार जंगल में जहाँ दिखाई पड़ता है
खेतों में खड़ी फ़सलों की जड़ों में / मिटता हुआ खेतिहर मजदूरों का वजूद
पिघलता हुआ पसीना-दर-पसीना। " [78]

इसी क्रम में ग्रामीण समाज में आर्थिक शोषण का मार्मिक चित्रण खींचते हुए कवि सी.बी.भारती लिखते हैं कि -

" कलुआ ने आज भी / पसीना बहाया / मजूरी की पूरा दिन / पूरा दिन
मसक्कत की जी भरकर / कलुआ ने आज भी / मालिक से मजदूरी मांगी।
आज भी कलुआ ने / मिन्नत की मालिक से / मगर आज भी मिली
बस कलुआ को झिड़की / आज भी कलुआ को टरका दिया मालिक ने कल पर। " [79]

ग्रामीण समाज में वर्गभेद अपने चरम स्वरूप में होता है। गाँव की सामंती व्यवस्था मजदूरों को नोच-नोच कर खाती रहती है। सरकारी योजनाओं के बावजूद पूँजीपतियों की चूंगाल से सर्वहारा मजदूर मुक्त नहीं हो पा रहा है। शहर हो या गाँव सर्वत्र संपत्तियों पर सवर्णों का ही वर्चस्व है। इस बात को कवि सूरजपाल चौहान ने इस प्रकार उठाया है -

" उनका खेत , उन्हीं का बैल / और उन्हीं का है ट्यूबवेल
मेरे हिस्से है मेहनत आई / उनके हिस्से में आराम।
मेरा गाँव, कैसा गाँव / न कहीं ठोर, न कहीं ठाँव। " [80]

इसी भाव-बोध के धरातल पर दलित कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों की विपन्नता का मार्मिक चित्रण किया है -

" कुँआ ठाकुर का / पानी ठाकुर का / खेत-खलिहान ठाकुर के

गली-मुहल्ले ठाकुर के/ फिर अपना क्या ? गाँव ? शहर ? देश ? " [81]

दलितों का जीवन दरिद्रता के घोर अंधकार में बीतता है । उनकी दरिद्रता-जन्य विवशताओं ने उनके जीवन को नरक बना दिया है । पूरी व्यवस्था उनके प्रति निर्दय एवं निष्ठुर बनी हुई है । दलितों की दरिद्रता का दिल दहलानेवाला चित्र कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने खींचा है - " राम बिरिज का छोटा लल्ला

दूध के लिए रोता है / बदले में थप्पड़ खाकर / चुपचाप सो जाता है । " [82]

यहाँ छोटा लल्ला पूरे दलित वर्ग का बाल जगत है और मजबूरियों की थप्पड़ उसके मूँह पर अपना निशान बनाती है । श्रमिक वर्ग के बालजीवन की दुर्दशा का वर्णन करती कुछ पंक्तियाँ देने का विनम्र प्रयास करूँगा -

" वह गरीब बच्चा / बहुत जल्दी सो गया / भूखा ही ,

यह सोचकर कि / फ़रिश्ते आते हैं / सपने में / रोटियां लेकर । "

आर्थिक अभावों में दलितों का जीवन अनेकानेक यातनाओं से भर जाता है । अर्थाभाव कदम-कदम पर उनके जीवन को रौंदता है । जीवन के प्रत्येक मोड़ पर उन्हें अपनी आर्थिक दुर्बलता का कटु एहसास होता रहता है । कवि श्यौराज सिंह 'बैचेन' ने दलित जीवन की एक और आर्थिक त्रासदी को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

" कड़वी दुखीली बैरिन रात है / रोटी-रोजी की उलझन खास है ।

मेरी बहना ललुआ पड़ी है बीमार / नकद मांगे वैध जी । " [83]

दलित कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपने पुरखों के यातनामय जीवन को बयाँ किया है । सामंती व्यवस्था ने उनके जीवन का सुख-चैन , सपने छीन लिये थे । वे रोटी के टुकड़ों के लिए तरसते रहते थे । क्योकिं पेट की आग के सामने सब को घूटने टेकने पड़ते हैं ।

" बस्तियों से खदेड़े गये / ओ , मेरे पुरखों / तुम चुप रहे उन रातों में
जब तुम्हें प्रेम करना था / आलिंगन में बाँधकर / अपनी पत्नियों को ।
तुम तलाशते रहे / मुट्ठी भर चावल / सपने गिरवी रखकर । " [84]

दलितों का दारिद्रय सवर्ण-निर्मित था । उनके सपनों को रौंदकर उन्होनें अपनी सत्ताओं का महल बनाया था । सवर्ण समाज दलित दमन के द्वारा अपने झूठे अभिजात्य को पोषता रहा है । दलितों के जीवन की आर्थिक अवदशा का वर्णन दलित कवि जयप्रकाश कर्दम ने अपनी 'लालटेन' नामक लंबी आत्मकथात्मक कविता में किया है - " यूं आर्थिक तंगी के कारण / कभी-कभी हफ़्तों तक ,
बिना छुकी-भुनी सब्जी भी हमारे घर नहीं बनती थी
प्रायः नमक के चावल /या उबले हुए आलू /नमक के साथ/ हम लोग खाते थे
हमसे जो बचता / माँ वह खाती थी / यानी हम सब की जूठन से ही
वह अपना पेट भरती थी / कभी-कभी भूखी भी रह जाती थी " [85]

समाज के अन्य वर्गों की सेवा-सुश्रुषा एवं उनके लिए सुविधाओं का निर्माण करनेवाला दलित वर्ग युगों-युगों से दरिद्रता की भयानक पीड़ा भोगता आया है । उसकी अवस्था उन पशुओं से भी बदतर थी , जिन्हे दिनभर श्रम करने के बदले में चारा या पानी मिल जाता है । पशुओं से कोई बेगार नहीं करवाता लेकिन मानवों से बेगार अधिकारपूर्वक करवायी जाती थी , क्योकिं कि वह निम्न वर्ग का है । दिनभर परिश्रम करके खून बहाने के बाद भी जब उचित मुआवजा नहीं मिलता तब मनमें जो हताशा , जो पीड़ा , जो आह-कराह उठती है उससे निजात पाना नामुमकिन है । डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर ने दलित-दिलों की इसी व्यथा-कथा को शब्द दिये हैं -

" इस देश की धरती पर / सबसे ज्यादा श्रमकण / बहाकर
इसे खुशहाल और सोने की चिड़िया / बनाया था / हमने / फिर भी
तुम हो कोठी-बंगले / ज़मीन-जायदाद वाले / और हम /
फटेहाल , भूखे , नंगे / क्यों है ? " [86]

समाज व्यवस्था के नाम पर दलितों पर लादी गयी मर्यादाएँ, बंधन दलित जीवन की विपन्नाताएँ बनकर रहे हैं । आर्थिक अभावों ने उनके जीवन को नरक बनाकर रखा है । वही दूसरी ओर पूँजीपतियों ने धन के ज़ोर पर सारी संपत्तियों एवं सुविधाओं पर अपना अधिकार जमा दिया है । ऐसी विषम परिस्थितियों में दलितों के हिस्से में केवल और केवल दरिद्रता एवं हीनता ही आयी है ।

" सदियों से / लुटते आ रहे / ये खेतिहर-मजदूर / दलित-शोषित
अपने खून-पसीने से / बढ़ाते रहे हैं / देश की संपदा को / बलात्कार कर
समृद्धों ने / समाज की समता / न्याय धर्म को / ताक पर रख / लूटा है
दोनों हाथों से / उसे / और / इसलिए / आज भी / वे / निर्धन हैं
असहाय हैं । " [87]

आर्थिक विपन्नताओं से कदम-कदम पर आहत होनेवाला दलित अपने सपनों को साकार होते नहीं देख पाता है । यथार्थ के कठोरतम धरातल पर उसकी जिजीविषाएँ बार-बार टूटती हैं , बिखरती हैं । व्यवस्थाजनित इस अभिशाप को वह जीवनभर ढ़ोता रहता है । समृद्ध वर्ग पैसों के ज़ोर पर अनेकानेक हथकंडे अपनाकर सारी सुविधाओं और संपत्तियों पर अपना अधिकार जमाए हुए है । पैसों की इस लेन-देन को कवि सूरजपाल चौहान ने धुनिया का गीत में यों लिखा है -

" पइसा तू अँचरा भर लैजा / काम मेरौ बस एक करै जा ।
काऊकूँ भनक लगैगी नाँय / तुन्नक-तुन्नक ताँय- ताँय । " [88]

दलित महेनतकश मानव है , वह किसी भी प्रकार के छल प्रपंच से धन नहीं कमाता अपना खून-पसीना बहाकर अपने लिए रोटियाँ जुटाता है । इस प्रकार 'सभ्य' प्रभुवर्ग की अपेक्षा ईमान के मामले में वह ज्यादा ऊँचा है , फिर भी उसे नीचा माना जाता है और तिरस्कृत किया जाता है , समाज की इसी विडंबना को डॉ.सोहनपाल सुमनाक्षर ने इस प्रकार चित्रित की है –

" तुम पुराने कपड़े पहनकर / टूटे-फूटे छप्पर में / रहकर / सच्चे मन से
जूटे हो / करने देश का निर्माण / पर फिर भी / वे सभ्यजन पुकारते हैं तुम्हें
' गंदे इँन्सान ' । " [89]

समाज के धनवान मानवों ने अपने धन के ज़ोर से व्यवस्था को अपने स्वार्थों की कैद में बंद कर दिया है । सदियों से जो स्थिति थी , वह आज भी रूप बदलकर समाज में व्याप्त है । समकालीन दलित कवियों ने न केवल दलितों में आर्थिक विषमताओं के प्रति चेतना उत्पन्न की है, बल्कि समाज के अन्य लोगों का ध्यान भी दलितों की मूल आवश्यकताओं रोटी-कपड़ा और मकान की और आकर्षित किया है । उन्होंने समाज के आर्थिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है -

" निर्धनता कीचक्की में पिस रहा समाज है / महँगाई की रगड़न में पिस रहा समाज है
मुट्ठी भर धनवानों में उलझी आर्थिक व्यवस्था ,
सदियों पहले सा शोषण विधमान आज है । " [90]

समाज में आर्थिक सुधारों का शोर मचानेवालों के गाल पर यथार्थ का चांटा लगाकर उन्हें दीवास्वप्नों से बाहर लाने की चेष्टा समकालीन दलित कवियों द्वारा की गयी है । सदियाँ बीत गई लेकिन दलितों की आर्थिक विवशताएँ आज भी कायम हैं , हाँ, उनका स्वरूप जरुर बदलता है लेकिन वे अभी भी दलित समाज को अपने राक्षसी जबड़े में दबाए हुए हैं । दलित कवि मलखान सिंह ने इस तथाकथित बदलाव का यथार्थ चित्रण किया है- " मेरी माँ मैला कमाती थी / बाप बेगार करता था

और मैं महेनताने में मिली जूठन को / इकट्ठा करता था , खाता था ।
आज बदलाव इतना बदलाव आया है कि / जोरू मैला कमाने गयी है
बेटा स्कूल गया है और / मैं कविता लिख रहा हूँ । " [91]

दलित कवियों ने मजदूरों की उस पीड़ा व छटपटाहट को साकार किया है , जिसे वे सदियों से भोगते आ रहे हैं । इनकी रचनाओं में जीवन का कड़वा सच उजागर होता रहा है । दलित कवियों ने आर्थिक प्रश्न को बराबर उठाया है और सभ्य समाज से उनके उत्तर तलब किए हैं ।

" मनुष्य बिकते हैं एक दिन के लिए / गाँव बिकते हैं जन्म भर के लिए ,
पच्चीस बर्ष की आयु से क्रतिदास / बंधुआ मजदूर , कल्लू चमार , पालतू पशु । " [92]

आर्थिक विषमता के इस कलंक ने भारतीय समाज को अत्यंत कुरूप बना दिया है , दूषित बना दिया है । भारतीय समाज में आर्थिक अभावों से जूझता दलित वर्ग हर पल , हर लम्हा आत्मत्राण के लिए छटपटाता रहता है । दलित जीवन की इस आर्थिक त्रासदी को कवि मंसाराम विद्रोही ने इस प्रकार पद्यबद्ध किया है -

" लू वर्षा ठण्ड न छोड़ कहीं , वे शोषित पीड़ित मरते जो
भूखमरी जहाँ की शोभा है , वे भारत में ही रहते जो । " [93]

उच्चवर्गीय समाज ने आर्थिक विषमता को दलित-शोषण का प्रमुख आधार बनाया है । अर्थाभाव के कारण दलितों को अपने जीवन को अत्याचारों की गर्ता में खुद धकेलना पड़ता है । आर्थिक विपन्नता दलित जीवन की अनेकानेक समस्याओं की जननी है । दरिद्रता भारतीय दलितों की सबसे बड़ी विवशता है । कवि श्योराजसिंह बैचेन ने 'प्रभाती का बिगुल' कविता में इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है ।

" देश की दरिद्रता से विवश मजदूर लोग / आधी निंद सोते और आधे पेट खाते हैं ।
सुख-सुविधाओं पै अदलितों का साम्राज्य /
जिजीविषा के दीप ह्रदय रक्त से जलाते हैं। " [94]

दलित कविता की भावधारा में दलितों की आर्थिक विपन्नता संबंधी विचारों के तूफ़ान उठते रहे हैं । दलित कविता साहित्य में दलित जीवन के इस दलदल को प्रत्येक रूप में अभिव्यक्ति मिली है । दलित जीवन की आर्थिक विडंबनाओं एवं विद्रूपताओं का चित्रण दलित कविता का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका है । डॉ. धर्मवीर ने दलित शोषण की कहानी कुछ इस प्रकार लिखी है ।

" शोषण की अमर बेल , दमन की महागाथा /
यातना के पिरामिड , उत्पीड़न की गंगोत्री / ऋणों के पहाड़ , ब्याज़ के सागर ,
निरक्षरों के मस्तिष्क , महाजनों की बही / रुक्कों पर अंगूठों की छाप , ऊट पटांग ,
जोड़-घटा , गुणा-भाग , देना , सब एक । " [95]

दलित कविता साहित्य ने दलितों के आर्थिक प्रश्नों को वाचा देकर अपना कर्तव्य पूरी तरह निभाया है । आर्थिक समस्याएँ दलित जीवन की सदियों से हो रही प्रताड़ना का कारण बनी हुई हैं और आज भी स्थिति में उतना बदलाव नहीं आया है । ग्रामीण समाज में आज भी स्थिति जैसी की वैसी ही है । वहाँ आर्थिक शोषण का घिनौना नृत्य आज भी दृष्टिगत होता है ।

5.4 शैक्षिक समस्याएँ

जीवन की समस्या शैक्षिक भी हो सकती है, यह विचार ही अपने आप में अजीब लगता है , लेकिन यहाँ शैक्षिक समस्याओं से तात्पर्य शिक्षा के अभाव से पैदा हुई समस्याओं से है । पूर्ववर्ती अध्यायों में दलितों पर थोपी गईं अनेकानेक निर्योग्यताओं का वर्णन किया गया है, इनमें शैक्षिक निर्योग्यताएँ भी प्रमुख हैं । प्राचीन काल से ही दलितों को शिक्षा के लिए सर्वथा अयोग्य माना गया है । यदि कोई शूद्र स्वअध्ययन से भी शिक्षा प्राप्ति कर लेते तो भी उसका हस्र क्या होता है , यह एकलव्य के उदाहरण से जग प्रसिद्ध है । वे शास्त्रों का पठन-पाठन तो नहीं ही कर सकते थे यदि गलती से भी उनके कानों में वेदवाक्य पड़ जाए तो धधकता शीशा उनके कानों में डाल दिया जाता था । किसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान करने की उन्हें अनुमति नहीं थी ।

नवजागरण काल के बाद इस स्थिति में बदलाव जरुर आया लेकिन उतना नहीं जितना अपेक्षित था और इन बदलावों को लाने का संपूर्ण श्रेय डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर , ज्योतिबा फूले जैसे समाज सुधारकों को जाता है । उन्होंने आजीवन संघर्ष करके दलितों में ज्ञान का दीप जलाने का प्रयास किया। परिणामतः दलित बच्चों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ । प्रारंभ में सवर्ण बच्चे इन बच्चों के साथ बैठने को तैयार नहीं थे इसीलिए इनके लिए अलग पाठशालाओं की व्यवस्था का आयोजन हुआ । उन पाठशालाओं में अध्यापकों का प्रश्न फिर उपस्थित हुआ , सवर्ण अध्यापकों ने गुरु द्रोण की परंपरा का पालन करते हुए इन दलित बच्चों को पढ़ाने से इनकार कर

दिया । शायद इसिलिए सर सयाजीराव गायकवाड़ के द्वारा ऐसी पाठशालाओं के लिए दूसरे राज्यों से कुछ मुसलमान तथा ईसाई अध्यापकों को आमंत्रित करने का इतिहास मिलता है । मेरे पिताजी की प्राथमिक कक्षाओं की पढाई भी इसी प्रकार की अलग पाठशाला में हुई थी, जो हमारे मोहल्ले के करीब और गाँव के बाहर थी । इस पाठशाला में एक ईसाई अध्यापक पढ़ाया करते थे । बाद में छठी या साँतवी कक्षा के बाद ही उनको गाँव की स्कूल में अलग बैठकर पढ़ने का 'सौभाग्य' प्राप्त हुआ ।

शिक्षा के अभाव में दलितों ने जो भोगा है , उन अत्याचारों के वर्णन को दलित कवियों ने अपनी रचनाओं का आधार बनाया है । दलित कवि खुद इन समस्याओं से जूझकर आगे आएँ है , अतः उनकी रचनाओ में वह संघर्षगाथा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । शिक्षा संबंधी अनेकानेक निर्योग्यताओं ने दलितों के विकास को कुंठित और अवरुध्ध कर दिया है । दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने समाज के तथाकथित बुद्धिजीवियों से यह प्रश्न किया है कि -

" यदि तुम्हें / पुस्तकों से दूर रखा जाए / जाने नहीं दिया जाए
विधा मन्दिर की चौखट तक / ढिबरी की मंद रोशनी में
कालिखपुती दीवारों पर / ईसा की तरह टांग दिया जाए
तब तुम क्या करोगे ? " 96

आधुनिक परिवर्तन के तहत दलितों को शिक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ है । लेकिन क्या वह शिक्षा उनके लिए सार्थक सिध्ध होगी , जबकि विधालयों में ही उनके साथ भेद-भाव पूर्ण व्यवहार किया जाता है । दलित छात्र को कदम-कदम पर उसके दलित होने का एहसास दिलाया जाता है । समता एवं भाईचारे का पाठ पढ़ानेवाले स्वयं असमानता पूर्ण व्यवहार का आचरण करते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से वर्णवाद को कायम रखते हैं ।

" हमें पढ़ाया / प्रगति का रास्ता दिखाया / लेकिन समता के मार्ग पर तुम
खुद नहीं चल पाए / हमने रखा तुम्हें / वर्ण और जाति से ऊपर
पर नहीं उठ पाए तुम अपनी / जातीय अहंमन्यता की संकीर्णता से

तुमने सुनायी हमें / प्रेम की कहानियाँ / सिखाया भाई-चारे का सबक
जगाए तुमने / राष्ट्रीयता के भाव भी / हमारे भीतर
लेकिन , नहीं चूक पाए तुम / पढ़ाने से / वर्णवाद का पहाड़ा । " [97]

नवजागरण कालीन बदलाव विद्यालयों से जाति भेद को दूर करने में शायद असफल रहे हैं । अध्यापक एवं सवर्ण छात्रों द्वारा आज भी दलित छात्रों को येन केन प्रकोरण प्रताड़ित किया जाता है । दलितों को शिक्षा उपलब्ध करवायी गई लेकिन विद्यालयों में माहैाल ही कुछ ऐसा बना रहा है कि दलित छात्रों को शिक्षा प्राप्ति के कदम कदम पर अपनी जातिगत निम्नता का बोध होता रहा है । विद्यालयों के इस माहौल को कवि जयप्रकाश कर्दम ने अपने शब्दों के द्वारा चित्रित किया है -

" सारे सवर्ण छात्र / गोलबंद हो जाते , और
खेल-अध्यापक से हॉकियां ले-लेकर / दलित छात्रों पर हमला बोल देते
इस हल्ले में / कई दलित छात्रों के हाथ-पैर टूटते / कइयों के सिर फूट जाते
और फिर/ स्कूल-परिसर के अन्दर / झगड़ा करने के जुर्म में / हम ही स्कूल से
'रस्टीकेट' कर दिए जाते । " [98]

शिक्षा देनेवाले अध्यापकों ने प्राचीनकाल से ही दलित छात्रों को छला है । आधुनिक सवर्ण अध्यापक भी द्रोण के ही अनुयायी हैं, वे भी यथा संभव प्रयास करते रहते हैं 'एकलव्यों' को शिक्षाहीन रखने का, इसीलिए दलितों का विश्वास ही इस गुरु शिष्य परंपरा से उठ चूका है । कवि सूरजपाल चौहान ने निर्भय होकर यह एलान कर दिया है कि -

" मैं नकारता हूँ / उस परंपरा को / जिसमें /तुम्हे विश्वास है
क्योकिं / गुरु-शिष्य परंपराने छला है / सदा / मुझे और मेरे समाज को । " [99]

एकलव्य दलितों के शैक्षिक उत्पीड़न का श्रेष्ठ उदाहरण है । उसने स्वअध्ययन से प्राप्त की शिक्षा की बलि उस गुरु के चरण में चढ़ा दी , जो पूर्ण रूप से उसका विरोधी रहा था । यदि देखा जाए तो द्रोण गुरुदक्षिणा का अधिकारी ही नहीं था ,

लेकिन उसके एक आदेश पर एकलव्य ने बिना हिचकिचाए अपना अँगूठा अर्पित कर दिया उस ढोंगी गुरु के चरणो में । एकलव्य के द्वारा शुरू की गई इस परंपरा ने द्रोण जैसे गुरुओं के अहम् को, उनके नापाक षडयंत्रो को प्रोत्साहन दिया । इसलिए आधुनिक एकलव्यों की दृष्टी से एकलव्य का यह कार्य उचित नहीं था । कवि श्यामसिंह शशी ने एकलव्य से यही कहा है कि –

" एकलव्य ! / तुम्हे भोला भंडारी कहूँ या ज्ञानी मूर्ख
जो अंगूठा काटकर / दे बैठे एक ऐसे गुरु को / दक्षिणा में
जिसने तुम्हे नहीं सिखाया था / क-ख-ग भी / धनुर्विद्या का । " [100]

जो भी हो एकलव्य का यह कार्य उसके उच्च संस्कार संपन्न होने का प्रमाण है । यह जानते हुए कि अंगूठा देने से उसकी सारी विद्या , सारी महेनत व्यर्थ हो जाएगी , उसने बेझिझक शिष्यभाव से गुरु को दक्षिणा अर्पित कर दी । इस दृष्टि से देखा जाए तो उच्च ज्ञानी एवं प्रखर गुरु द्रोण की अपेक्षा वह वनवासी भील एकलव्य ज्यादा ज्ञानी एवं महान सिद्ध होता है । आधुनिक दलित द्रोण गुरुओं के इस षडयंत्र से भली-भाँति परिचित हो चूका है इसीलिए, वह आज के एकलव्यों को सचेत करता है और जीवन संघर्ष के लिए प्रेरित करता है –

" एकलव्य ! / मूर्ख मत बनना फिर / अंगूठा मत देना , मेरे बंधु
अब किसी प्रपंच को / सुरक्षित रखना उसे / अगले युद्ध के लिए । " [101]

शिक्षा प्राप्ति से दलित समाज में नयी चेतना का संचार हुआ है । वह अपने अधिकारों के प्रति और जागरूक हो गया है और यदि वह अधिकार प्राप्त न हो तो वह समाज से , समाज की रूढियों से , परंपराओं से दो-दो हाथ करने की शक्ति भी संचित कर चूका है । शिक्षा ने दलित समाज में गज़बनाक आत्मविश्वास का आरोपण किया है । दलित नारियों में भी अब अस्मिताभाव प्रखर हुआ है , वह भी समाज के साथ कंधा मिलाकर चलने को तैयार है –

" अक्षर के जादू ने / उस पर असर बड़ा बेजोड़ किया / चुप्पा रहना छोड़
दिया, लड़की ने डरना छोड़ दिया / हँसकर पाना सीख लिया,
रोना-पछताना छोड़ दिया / बाप का बोझ नहीं होगी वह ,
नहीं पराया धन होगी/ लड़के से क्यों / कम होगी,
वो उपयोगी जीवन होगी । " 102

शिक्षा की रोशनी ने दलित जीवन में व्याप्त अज्ञानता के घोर अंधकार को दूर कर दिया है । उन पर थोपी गई सारी मर्यादाओं और बंधनो को उसने अक्षर ज्ञानरूपी हथोड़े से तोड़ दिया है । दलितों की दृढ़ संकल्पवृत्ति एवं अटूट हिमंत ने उनके जीवन का स्तर ही बदल दिया है । सच्चे हीरे रूपी दलितों ने केवल अपनी अटूटता का ही प्रमाण नहीं दिया है बल्कि प्रहार करनेवाले को उछलकर चोट भी की है । कवि श्योराजसिंह बैचेन दलितों की इस दृढ़ता को दलितों पर थोपी गई निर्योग्यताओं के संदर्भ में इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

" वे अल्पतम थे / पर थे लोहात्मा / वे फूटे तो / छोटी-छोटी
छैनियों में बदलते गए / कुछ ने बनाया चाकू , छूरी / कुछ ने बनाई
बेडियाँ, हथकड़ियाँ / कुछ ने कपाट चोखटें बनाई / और कुछ
ने बनाए / अक्षर लोहे के । " 103

दलितों के हाथ में शिक्षा का अमोध शस्त्र आ गया है , जिससे वे अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ़ लड़ने के लिए संपूर्ण सज्ज है । वह इस शिक्षा के हथियार से समाज की सारी गन्दगी को मिटाना चाहता है और समता पर आधारित मानव समाज की स्थापना के सपने देखता है । शिक्षा के हथियार से वह समाज की प्रत्येक कुरीति से लड़ना चाहता है । प्रगतिशील कवि मोहनदास नैमिशराय ने दलितों की इस मंशा को जाहिर किया है-

" कल झाडू से मैं तुम्हारी गन्दगी हटाता था / आज कलम से
मैं तुम्हारे भीतर की गन्दगी धोऊँगा / तुम वाचाल हो / मुझे मालूम है
तुम चतुर हो / मुझे अहसास है / तुम धूर्त और व्यभिचारी हो

मैं भुक्तभोगी हूँ / तुमने गन्दगी फैलाने के लिए
वेद / पुराण / मनुस्मृति का सहारा लिया / कल उन्हें जलाने का
मुझे अधिकार न था / आज शब्दों की आंच से / मैं उन्हे जलाऊँगा । " [104]

शिक्षा के प्रसार के कारण दलित जीवन में दोहरे प्रभाव पडे हैं । जहाँ एक और शिक्षित होकर वे अपना जीवन स्तर उपर उठा रहें हैं वहीं बढ़ती बेरोजगारी ने उनके दिलों को हताशा एवं निराशा से भर दिया है । दलितों में भी शिक्षित बेरोजगारी का प्रमाण लगातार बढ़ता जा रहा है । शिक्षित दलित उनकी शिक्षा के अनुरूप नौकरी नहीं कर पा रहे हैं , तो दूसरी और वे शारीरिक श्रम से कतराते रहे हैं इसलिए उनकी स्थिति 'त्रिशंकु' जैसी हो रही है । दलित की इस मनोदशा को कवि श्योराजसिंह बैचेन ने इस प्रकार प्रतिबिंबित किया है-

" यदि मैं नहीं पढ़ता / मैं नहीं पढ़ता / तो क्या करा पाता / माँ का इलाज
जो नहीं करा पाता / पढ़ने के कारण भी / मैं नहीं पढ़ता तो
नहीं मरती माँ / असमय ही / कैसे बचा पाता / मजूरी से भी नहीं
बचा पाया मजूर भाई भी । " [105]

उच्चवर्गीय समाज ने शिक्षा व्यवस्था को इतना उलझा दिया है कि शिक्षा पाकर भी दलित 'दलित' ही रह जाता है । निजीकरण के इस जमाने में गाँव के समृद्ध परिवार के बच्चे शहर के अच्छे स्कूलों में विद्या प्राप्त करते हैं , जबकि गाँव की सरकारी पाठशालाओं में 'विधा सहायक' या 'शिक्षण सहायक' जैसे कम वेतन पानेवाले अध्यापक पढ़ाते हैं । दूर-दराज के गाँवों में जहाँ गरीब मजदूरों के ज्यादा बच्चे पढ़ते हैं वहाँ की शिक्षा व्यवस्था को भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता है । अतः शिक्षक विद्यालयों में कितने दिनों तक जाते ही नहीं । इसका सीधा असर उन गरीब बच्चों की शिक्षा पर पड़ता है और इसीलिए वे बच्चे आगे चलकर शहरी छात्रों से प्रतियोगिता नहीं कर पाते हैं । इस प्रकार शिक्षा पाकर भी दलित, दुनिया की दौड़ में कहीं पीछे छूट जाता है । दलित कवि मलखान सिंह ने सत्य ही कहा है कि-

" इस तथ्य को बचपन में ही / जान लिया था मैंनें कि-
पढ़ने लिखने से कुजात / सुजात नहीं हो जाता / कि पेट और पूँछ में
एक गहरा सम्बन्ध है / कि पेट के लिए रोटी ज़रूरी है
और रोटी के लिए पूँछ हिलाना / उतना ही ज़रूरी है । " [106]

उच्चवर्ग ने निजीकरण की 'उदारता' के द्वारा अच्छी शिक्षा को दलितों से दूर कर दिया । अच्छी और ऊँची शिक्षा समर्थ और सम्पन्न वर्ग के लिए ही सुरक्षित कर दी । इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था के कारण दलितों में बहुत कम लोग शिक्षित हो सके । यदि सर्वेक्षण किया जाए तो ज्ञात होगा कि दलित जातियों में शिक्षा का प्रमाण अन्य जातियों की तुलना में बहुत कम है । शिक्षित दलितों में भी बहुत कम लोग नौकरी पा सके हैं । इसीलिए दलित समाज में एक नया प्रचलन हुआ कि जो लोग शिक्षित बनके नौकरी करने लगे हैं उन्होंने अपना एक अलग वर्ग बना दिया है और वे बाकी दलितों से कटकर रहने लगे हैं । वे समाज में एक नयी पहचान पाने को चेष्टारत हैं । उन्होंने अपने नाम एवं उपनाम भी सवर्ण जातियों के समान रख दिये हैं जिससे वे अपनी जाति को छिपा सके । कुल मिलाकर शिक्षित लोगों के मन में अपनी जातिगत नीचता का बोध और प्रखर हुआ है । शिक्षा का यह एक ऐसा पक्ष है जो दलितों के खिलाफ़ खड़ा है ।

5.5 राजनैतिक समस्याएँ

कवि श्री ओमप्रकाश वाल्मीकिजी का कहना है कि साहित्य एवं राजनीति का गहरा संबंध है। कोई भी साहित्यिक आंदोलन राजनैतिक आंदोलन की भूमिका बनता है। "[107] किसी भी समाज की राजनैतिक गतिविधियाँ एवं परिस्थितियाँ उसके साहित्य को प्रभावित करती हैं ।भारत एक प्रजातांत्रिक देश है, यहाँ लोगों की, लोगों के लिए एवं लोगों के द्वारा संचालित शासन व्यवस्था है । इस व्यवस्था के तहत देश के प्रत्येक व्यक्ति को वोट देने का एवं अपने प्रतिनिधियों को चुनने का संवैधानिक

अधिकार है । प्रजातंत्र के अनुसार देश के सभी व्यक्ति को आत्मोन्नति एवं समाजोन्ति के समान अवसर दिये जाते हैं ।

लेकिन भारतीय समाज की कटु वास्तविकता कुछ और है । आजादी के अर्धशतक के बाद भी आज भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा इस शासन व्यवस्था की मुख्यधारा का हिस्सा नहीं बन पाया है । भारतीय राजनीति को सत्ता-लोलुपता ,स्वार्थवाद ,वंशवाद ,जातिवाद ,और भाई-भतीजावाद जैसे जहरीले साँपों ने अपने पाश में जकड़ लिया है । यहाँ जाति-पाँति, धर्म , भाषा, प्रदेश आदि के नाम पर वोट मांगे जाते हैं और इस प्रकार समाज को टुकडों में विभक्त करके अपनी सत्ता को बनाए रखते हैं । धार्मिक उन्माद एवं अंधविश्वासों को वोट प्राप्ति का साधन बनाया जाता है ।

समाज के ऐसे राजनैतिक माहौल में पहले से ही पिछड़ा हुआ दलित,शोषित वर्ग और पिछड़ गया है । सत्ता प्राप्ति के षडयंत्रों के चक्रव्यूह में वह अपना अस्तित्व ढूँढ रहा है । दलित साहित्य ने दलित-जीवन के इस पक्ष को अभिव्यक्ति दी है । “दलित साहित्य उसी संघर्षशील चेतना की अभिव्यक्ति है । दलित सदियों की दासता और शोषण , दमन , उत्पीड़न के कारण हीन भावना से ग्रसित थे । इसी हीन भावना को तोड़कर एक मनुष्य के रूप में उसकी पहचान और स्वाभिमान को स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है ।” [108]

देश की राजनैतिक अवदशा के संबंध में डॉ. रमेशकुमार का कहना है कि - “ यह मानना उचित होगा कि पूंजीवादी जनतंत्र में राजनीति का मुखौटा भ्रष्ट एवं अमानवीय हो गया है । राजनीति ने व्यवस्था में अपराधीकरण, हिंसा, अत्याचार,भ्रष्टाचार, शोषण और अवसरवाद को बढ़ावा दिया । देश में राजनैतिक दलों के नेताओं ने अपने स्वार्थ हेतु सांप्रदायिकता, जातिवाद, वर्ग भेद, धार्मिक कट्टरता, क्षेत्रीयता को अधिक बढ़ावा दिया । यह कहना चाहिए कि राजनैतिक पार्टियाँ और राजनीति का रवैया भ्रष्टाचारी, हिंसक और मानव- विरोधी

बन चूका है । देश की जनता द्वारा बनाई गई सरकार ने पूंजीवादी हितों की ज्यादा सुरक्षा की, उसका शोषित वर्ग के प्रति उपेक्षा का रुख बना रहा । " [109]

अतः शोषित वर्ग पर राजनैतिक निर्योग्यताओं का रूपान्तरण करके उसे कायम रखा गया । राजनीति के इस दलदल में दलित वर्ग ने बहुत कुछ झेला है, बहुत कुछ सोचा है और बहुत कुछ करना चाहा है । दलित की यह मनोव्यथा उसके साहित्य में उजागर होती रही है । यहाँ पर हम समकालीन एवं आधुनिक कवियों की रचनाओं में व्यक्त राजनैतिक बोध को चित्रित करने का प्रयास करेगें । भारतीय राजनीति ने हमेशा दोहरे मानदण्डों को अपनाया है । राजनीति के व्यवसायीकरण ने इस मानदण्डों के द्वारा वर्गों के बीच की खाई को और गहरा किया है । कवि बेचैन ने 'जिन्दा लोग मिले' कविता में इन दोहरे मानदण्डों का पर्दाफाश किया है -

" लोग मिले उजले कपड़ों में / मन के काले लोग मिले ।
मरज मुफलिसी को फैलाते / पैसे वाले लोग मिले ।
नाम पै मंदिर और मस्जिद के / खाते चन्दा लोग मिले ,
खुर्शीवाले , बंगलों वाले / खादी वालें लोग मिले । "
दहेज –रोधक दस करोड़ की / शादी वाले लोग मिले ।
मतलब की बारूद से युग को / करते अँधा लोग मिले । " [110]

राजनीति में दलितों का महत्व एक वोट से अधिक और कुछ नहीं है । दलितों के उत्थान के वादे करके भोले दलितों के वोट हासिल करना राजनेता अच्छे से जानते हैं , कवि सूरजपाल ने उचित ही कहा है -

" उन्मादी / धर्म के नाम पर / जब चाहे / निकल पड़ता है यात्राओं पर,
वर्ण व्यवस्था की ओट लिए / सेंकता है राजनैतिक रोटियाँ " [111]

भारतीय राजनीति में चुनाव पद्धति एक ढकोसला मात्र बनकर रह गई है । जनता अपना मूल्यवान मत देकर आशाओं की गठरी लिए नयी सरकार से प्रगति के

दिवास्वप्न देखती रहती है । जबकि सरकार सुख के सपनों में खोई हुई जनता को देती है केवल और केवल झूठा आश्वासन । ऐसे जनतंत्र एवं चुनाव कि खिल्ली उड़ाते हुए कवि धूमिल ने लिखा है कि -

" में सोचता हूँ अपना परिवार / कल तक / हम अपने मतदान से बाहर
भरम में / एक हँसते-गाते , पालते - पलते / लोकतंत्र थे । " [112]

दलित साहित्य दलित जीवन के परिवर्तन, पहचान एवं आकांक्षा तथा चेतना से जुड़ा हुआ साहित्य है । राजनीति के कुटिल दाँव-पेच और दमन-नीति से उपजे दुःखद यथार्थ को दलित हमेशा झेलता आया है । और इस दलित की पीड़ा को सामर्थ्यवान दलित कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने व्यंग्यात्मक रूप में वर्णन किया है ।

" ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं के कहकहे / सफ़ेदपोश नेताओं के भाषण
चौराहे पर गाँधी का पुतला / गलियों में समाजवाद का नारा
मेरा मन बहला रहा है । " [113]

राजनैतिक अव्यवस्था के प्रति रोष दलित रचनाओं में उभरकर आता है क्योंकि राजनीति ने भी दलित को धर्म की भाँति ही छला है , दला है । दलित वोट सत्ताप्राप्ति के मार्ग को आसान बना देता है अतः इन गरीबों को , शोषितों को सुख के सपने दिखाकर उनको छला जाता है । इसी छलना की यथार्थ अभिव्यक्ति सुखवीर सिंह की कविता 'करवट' में मिलती है -

" हर बार / सत्ता के रथ का पहिया / गुजरता है गरीब के पेट पर से ही ।
लीक बनाता हुआ / और धूल में लिथड़े खून से नहाए
धंसे गाल और चिपके पीपे सा शरीर लिए / ये लोग -
कतार बाँधकर करतें हैं सलाम / हर उस मुक्ति दूत को
जो चुनाव परिणाम की घोषणा के पश्चात / शोकिया बदल लेते हैं करवट । " [114]

यह एक कटु यथार्थ है कि राजनीति में भी दलितों के दमन का एक भी मौका सवर्णों ने छोड़ा नहीं है । दलित बेचारा अपने वोट की किमत क्या जाने ? उसे तो

उन्हें ही वोट देना है जो ठाकुर का साथी है । उसे वोट देने में भी स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त नहीं हो पाया है । अपने चहीते को वोट न देने पर उनके साथ भयानक अत्याचार भी किये जाते रहे हैं ।- इस राजनैतिक अत्याचार के प्रश्न को कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस प्रकार उठाया है -

" यदि तुम्हें / वोट डालने से रोका जाए / कर दिया जाये लहूलुहान
पीट-पीटकर लोकतंत्र के नाम पर / कदम-कदम पर
याद दिलाया जाए जाति का ओछापन / दुर्गन्ध भरा हो जीवन
हाथ में पड़ गए हो छालें / फिर भी कहा जाए / खोदो नदी नाले
तब तुम क्या करोगे ? " [115]

राजनैतिक नेत्तृत्व करने वाले जन प्रतिनिधि जनता के पैसों से ही मोटे पड़ते हैं । वो जनता को ऊँट के मूँह में जीरा जितना देकर बाकी खुद डकार जाते हैं । वह जनता के पैसों का उनके हक्कों और अधिकारों का इस्तेमाल करके अपनी शक्ति और संपत्ति बढ़ाते हैं । डॉ. धर्मवीर ने अपनी कविता में इस स्थिति की और व्यंग्यात्मक संकेत किया है -

" चार वोट अधिक बटोर आपे से बाहर हो गए / दस गुंडे इकट्ठे कर नारे लगवा दिए
बीस गेहूं के दाने बाँट कोठी-कुठले वाले हो गए
दो अक्षर अधिक पढ़ लुटेरे बन गए। " [116]

स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज में यह 'परिवर्तन' आया है कि अमीर आदमी तेजी से अधिक अमीर हो रहा है और गरीब दिन-ब-दिन ज्यादा गरीब होता जा रहा है । और इस परिस्थिति का सारा 'श्रेय' राजनैतिक एवं सामाजिक व्यवस्था को जाता है । चुनाव के दिनों में जनता को प्रलोभन देकर आश्वासनों की अफ़ीम खीला दी जाती है । बाद में अगले चुनाव तक जनता उनको याद नहीं आती । राजनेताओं में राजनैतिक मूल्यों के इस पतन को कवि विद्रोही ने लोक-शैली में बयान किया है -

" सखी री संसद में का होई / 'छुआ-छूत' में पीढ़ी खपि गई , धर्म
महरी नोई / ज्यों सिद्धार्थ भवन में बैठे , सुख के साधन ढोई /
जिनको जनता ने चुनकर भेजा , लोकसभा में सोई ।
मंदिर सेवक या 'विद्रोही' जागन केवल दोई /
सखी री संसद में का होई ? " 117

जनता से मूँह फेर लेने के कारण वह नेता जनता में अप्रिय बन जाता है और इसलिए नेता अपने ही मतदाता के सामने जाने से डरता है । यह स्थिति किसी नेता विशेष की नहीं बल्कि पूरी की पूरी पार्टियों के झूंड की होती है । इस राजनैतिक यथार्थ का चित्रण कवि बेचैन ने इस प्रकार किया है -

" आपको झूंड जो / घबराया हुआ लगता है / देश इन हाथियों का
सरमाया हुआ लगता है / जमुहरियत पै जो / छाया है तबाही की तरह
हम कसाई को / जीताते रहे भाई की तरह । " 118

देश की भ्रष्ट राजनीति ने आम इन्सान के दिल में खौफ़ पैदा कर दिया है । धर्म-जाति के झगड़े को , दहेज़ जैसी सामाजिक कुरीतियों को जब राजकीय संरक्षण मिल जाता है , तो ये प्रवृतियाँ बेखौफ़ बनकर फैलती जाती हैं । अपनी चुनी हुई सरकार से आम आदमी की जो अपेक्षाएँ होती हैं , वह सत्ता प्राप्ति के बाद स्वप्न बन जाती है । सत्ता मिल जाने पर राजकीय नेता अपने कर्तव्य को छोड़कर पैसे एकत्रित करने में लग जाते हैं । ऐसी दुर्व्यवस्था पर दलित कवि डॉ. कुसुम वियोगी का ह्रदय व्यग्र होकर चीत्कार कर उठता है -

" नेता सारे लुभा रहे हैं , सत्य अहिंसा की बोली से ।
जाति-धर्म-भाषा के बल पर खेल खून की होली से ।।
अधिकारों की लड़े लड़ाई , दफ़न करें वे गोली से ।
दहेज-दरिन्दे जला रहे जो दुल्हन उतरे डोली से ।।
हुआ न्याय का आसन डग-मग हुई धर्म से हीन धरा ।
देख व्यवस्था राज-काज की आम आदमी डरा-डरा ।। " 119

भारतीय राजनीति में पक्षांतरण की बीमारी दीमक की तरह फैली हुई है । नेता अपने स्वार्थ के सामने अपने कर्तव्यों और सिद्धांतों को किनारे रख देता है । जिस पक्ष को वह कल तक गालियाँ दे रहा था, आज वह उसी पक्ष का सदस्य बनकर पार्टी के 'महान' सिद्धांतो पर भाषण दे रहा है । शायद राजनीति में नैतिकता या सिद्धांतवादिता अब समाप्त हो गई है । हर जन प्रतिनिधि का एक मात्र लक्ष्य सत्ता प्राप्ति ही है । देश की राजनीति में दल-बदल की प्रवृत्ति , मौका परस्ती , झगड़े एवं टोपी बदलाव , स्वार्थ साधना तथा सुविधा भोग की लालसा दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है , दलित कविता ने ऐसे - दल-बदलू नेताओं पर व्यंग्यात्मक चोट की है-

" यह सड़क देख रही है कब से कि उस पर से / आदमी नहीं ,
केवल जुलूस गुजरें है / चहरे नहीं , वर्दियाँ और झण्डे गुजरे है
उसे पाँव के दबाव में कोई फर्क नहीं महसूस हुआ है
वह हैरत से देखती रही हैं कि जनता की सेवा के लिए
वर्दियाँ और झण्डें क्यों बदले जा रहे रहे हैं । " [120]

अपने निजी स्वार्थ हेतु बार-बार पार्टी बदलनेवाले और अपने 'सिद्धांतो' में परिवर्तन लानेवाले नेता देश के गरीबों की स्थिति में कोई परिवर्तन लाना नहीं चाहते हैं । क्योंकि गरीबों को दीन-हीन बनाये रखने में ही उनकी सत्ता सुरक्षित है । अगर उनकी स्थिति बेहतर हो गई तो वे धन-मदिरा आदि प्रलोभन में आकर मतदान नहीं करेंगे । इसीलिए जब तक उनका जीवन अभावों से भरा है , तब तक ही उनकी सत्ता कायम है । समाज से पिछड़े हुए इस सर्वहारा वर्ग के लिए तो सत्ताधारी पक्ष और विपक्ष दोनों ही एक समान है । दोनों में से कोई इन का हित नहीं चाहता है -

" सखी री दोनों जैसे एक / सत्ता , पक्ष , विरोधी भारत , भांति गीत की टेक ।
नहीं कोई परिवर्तन चाहे , झुग्गी झोंपड़ी देख / सखी री दोनों जैसे एक । " [121]

डॉ. अम्बेडकर दलितों के मसीहा थे । उन्होंने दलितों को दमन एवं दलन के दलदल से निकालने के सार्थक प्रयास किए हैं । अतः निश्चित रूप से दलित साहित्य उनके सिधान्तों का अनुसरण करता है । डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को शिक्षित एवं

संगठित बनकर संघर्ष करने का आह्वान किया था । बाबा साहब राजनीति को अपनी पीड़ाओं को दूर करने का एक सबल माध्यम मानते थे । अतः उन्होंने दलितों को राजनीति में सक्रिय हिस्सेदारी के लिए प्रेरित किया था । कांशीराम , मायावती रामविलास पासवान आदि ने उन्हीं के पदचिन्हों पर चलकर भारतीय राजनीति में अपना स्थान बनाया है ।

5.6 नैतिक समस्याएँ

भारतीय राजनीति में दलित चेतना का सबसे बड़ा विस्फ़ोट तब हुआ जब देश के प्रथम गैर कोंग्रेसी प्रधानमंत्री वी.पी.सिंह ने मंडल कमिशन की रिपोर्टों के आधार पर सरकारी सेवाओं में पिछड़ो के लिए आरक्षण को लागू किया । समाजवादी वी.पी.सिंह के इस साहस भरे कदम ने पूरे देश को आंदोलित कर दिया । जहाँ एक और सवर्ण समाज ने इसका ज़ोर-शोर से हिंसक विरोध किया वहीं दूसरी और दलित समाज ने एक जूट होकर इनके विरोध का मुंहतोड़ जवाब दिया । इस समयकाल में दलित कविताओं ने इस संघर्षगाथा को अपना वर्ण्य विषय बनाया ।
आरक्षण का विरोध करनेवालों को दलित कविता ने आड़े हाथों लिया और उन्हें उनके द्वारा आरक्षित नाना प्रकार की सुविधाओं एवं योग्यताओं का एहसास दिलाया- “ आरक्षण के विरुद्ध बोलनेवाले / पहले / अपने गिरेवान में निहारो

तुम्ही जन्मदाता हो/इस आरक्षण के/मन्दिरों का पुजारी सिर्फ ब्राह्मण ही होगा
विद्या का शिक्षक सिर्फ ब्राह्मण ही होगा / बोलो , ब्राह्मणों के लिए
किसने बनाया था यह आरक्षण ? ” [122]

दलितों ने सवर्ण समाज को और उनके द्वारा बनाए गए अघोषित आरक्षण को बेनकाब कर दिया है । योग्यता एवं गुण की जगह सिर्फ जाति आधारित यह आरक्षण का विरोध क्यों नहीं है ? यह प्रश्न उठाया है । दलितों पर इसी सवर्ण- आरक्षण के आधार पर जो अमानवीय अत्याचार हुए हैं और आधुनिक समय में भी जो अप्रत्यक्ष रूप से हो रहे हैं इस का पर्दाफाश कवि कालीचरण ‘स्नेही’ ने किया है

" हमें आरक्षण प्राप्त हैं / नरक में , नौकरी में , नगरपालिका में ,
शिष्यवृत्ति में , भिक्षावृत्ति में , चुनाव में ,
एक बत्ती कनेक्शन में , पंचायत के इलेक्शन में ,
फ़ोर्थ क्लास के सिलेक्शन में / बंजर जोतने में , सफेदी पोतने में। " [123]

आरक्षण का विरोध करनेवालों को लताड़ते हुए, तार्किक प्रश्नों के द्वारा दलितों ने सवर्ण समाज की खोखली एवं कुटिल मानसिकता का पर्दाफाश कर दिया है । अगर तुम आरक्षण का विरोध करते हो तो पहले तुम अपना आरक्षण छोड़ दो ऐसा मार्मिक प्रहार कवि सोहनपाल सुमनाक्षर ने किया है -

" भले ही तुम हमारी / आरक्षण की बैसाखी तोड़ो / पर
पहले तुम अपना आरक्षण छोड़ो / कल से / कोई ब्राह्मण पुजारी नहीं होगा
जमींदार के बाद / उसका बेटा / अब जमींदार नहीं होगा
व्यापार पर जो छाये हुए हैं / कल से उनका कोई बेटा
उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं होगा / सेना में भर्ती / अब
जाति आरक्षण पर नहीं होगी / कह दो । " [124]

यदि तुम यह नहीं छोड़ सकते तो तुम्हें आरक्षण का विरोध करने का कोई अधिकार नहीं है । आरक्षण का विरोध वस्तुतः दलितों के उत्थान-पथ पर सबसे बड़ा अवरोध है । समाज व्यवस्था में कृष्ण ने तो गुण और कर्म को महत्व दिया था , तुमने इसे जन्म आधारित या जाति आधारित क्यों बनाया ? समाज के सदियों से संतप्त समाज को उद्धार के लिए यदि आरक्षण की बैशाखी मिल भी जाए तो उसका इतना विरोध क्यों है ? क्या शूद्र सर्वगुण सम्पन्न होकर भी बेगार करने के लिए, मैला उठाने के लिए ही जन्मा है ? उसका दोष केवल इतना ही है कि वह शूद्र के उदर से जन्मा है ? सवर्ण समाज से ऐसे प्रश्न तलब करते हुए कवि सुमनाक्षर लिखते हैं -

" क्या शूद्र का बेटा / सर्वगुण सम्पन्न होकर किसी और के पेट से जन्मा है ?
बोलो, अगर नहीं तो फिर / उस आरक्षण का विरोध / क्यों नहीं है ?
और / दलितों के उत्थान के लिए मिली / इस बैशाखी का विरोध क्यों है ? " [125]

भारत की आधुनिक राजनीति ने दलितों के दमन को नये-नये नकाबों से जारी रखा है । यह कड़वा सच है कि आज़ादी के इतने वर्षों के बाद भी भारतीय समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग आज भी समाज की मुख्य धारा में शामिल नहीं हो पाया है । विकास के मृगजल में इनकी अधोगति अद्रश्य हो गयी है । देश विकास पथ पर अग्रसर है , ऐसा भ्रमजाल बनाकर देश के सामाजिक यथार्थ को पर्दानशीं कर दिया है । कवि कँवल भारती ने इस परदे को उठाते हुए कहा है कि -

" हम नई सदी में प्रवेश कर रहे हैं / उस व्यवस्था के साथ
जिसमें करोड़ों मजदूरों का / आदिवासियों का ,
गरीबों का विस्थापन है / दमन और भूख की विभीषिकाएँ हैं
और उन पर कानून की सहमतियों की विडंबनाएँ हैं " [126]

भारतीय समाज की कटु वास्तविकता यही है, देश तो आज़ाद है लेकिन इसकी अधिसंख्यक जनता आज भी मानसिक गुलामी,गरीबी,असमानता और सामाजिक एवं सांस्कृतिक रुढियों में कैद है । समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग आज भी अपने वजूद की तलाश में है । समाज की इस अवदशा को चित्रित करती अदम गोंडवी की पंक्तियाँ मन में कौंध जाती है -

" सौ में सत्तर आदमी फ़िलहाल जब नाशाद है
दिल पर रखकर हाथ कहिए देश क्या आज़ाद है ?
कोठियों से मुल्क के मेआर को मत आंकिए
असली हिन्दुस्तान तो फुटपाथ पर आबाद है । " [127]

पूंजीपतियों एवं प्रभु वर्ग का आधिपत्य समाज की अवदशा के लिए कारणभूत है । राजनीति को इनकी कैद से मुक्त करवाना असंभव-सा दिखाई देता है। इसके लिए एक प्रबल जन आन्दोलन की आवश्यकता उभरी है । दलित कविता साहित्य ने देश की जनता को इस संघर्ष के लिए तैयार करने का बीड़ा उठाया है । यही तथ्य दलित साहित्य का सामाजिक सरोकार सिद्ध करता है । कवि कुमार विकल ने इस तिलस्मी तंत्र के मुखौटे को उतारने का प्रयास किया है -

" किसी मन्त्र से राजतन्त्र का दरवाजा नहीं खुलता
अगर आग को शहर में लाना है / तो सिमसिम की मुद्रा को छोड़ना होगा
इस बंद दरवाजों को तोड़ना होगा । " [128]

इस प्रकार यदि देखा जाए तो समकालीन दलित कविता में राजनैतिक चेतना का स्वरूप प्रखर है । कवियों ने उन कमियों और विसंगतताओं को उभारा है , जिनके लिए राजनीति ही पूर्ण रूपेण दोषी है । राजनीति का यह यथार्थ है कि राजनेता एवं तंत्र- व्यवस्था ने जन-विरोधी एवं स्वार्थी नीतियों का प्रयोग किया है । जनता को झूठे आश्वासन के द्वारा राजनीति में सत्ता प्राप्ति का साधन मात्र बनाकर रख छोड़ा है । यही वजह है कि देश की मूलभूत समस्याएँ गरीबी , भूख , बेरोजगारी का आज भी उचित समाधान प्राप्त नहीं हुआ है । समकालीन दलित कविता ने इन सारे तथ्यों का मार्मिक विश्लेषण किया है और इनको अपना वर्ण्य विषय बनाकर अपने काव्य स्वरूप को और सार्थक एवं सफल बनाया है ।

दलितों का जीवन ही समस्याओं के बीच बीतता है । उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक वह नाना प्रकार की निर्योग्यताओं , प्रताडनाओं एवं विंडबनाओं का भोक्ता बनता रहता है । उसका जीवन समस्याओं एवं अत्याचारों के द्वारा रौंदा जाता है । तब उसका दिल चित्कार कर उठता है , परिवर्तन के लिए , बदलाव के लिए । वह ऐसी व्यवस्था को ध्वस्त कर देना चाहता है , जो इसकी अवदशा के लिए कारणभूत है ।- " कब मिलेगा पशुतुल्य मानव को / अधिकार !
कब बदलेंगे कर्मकाण्ड / कब मिलेगा सामाजिक न्याय
पूछो उससे / अन्यथा / कर दो उसके टुकडे-टुकडे । " [129]

दलित समाज ने उन पर किये जाने वाले अत्याचारों को अपनी नियति मान लिया है । लेकिन यह स्थिति सर्वथा उचित नहीं है । डॉ. अम्बेडकर को भगवान माननेवाला यह समाज उनके आदेशों संगठित बनो और संघर्ष करो , को क्यूँ भूल गया है ? दलित कविता में दलित संगठन एवं एकता की अनिवार्यता को बखूबी उजागर किया गया है । राजनेता एवं धर्मगुरुओं की 'फूट डालो और राज करो' की

नीति के सामने दलितों को सजग एवं सचेत करने का सार्थक एवं सफल प्रयास दलित कविता को गरिमा प्रदान करता है । कवि सूरजपाल चौहान ' कारवाँ को आगे बढाओ ' गीत में बहुत कुछ कह जाते हैं -

" एकता के गीत कलम गा रही है / किन्तु दलितों नींद तुम को आ रही है ,
भीम के खाते से मत इतना निकालो / जो शेष बचा है उसे अब तो संभालो ।
देवताओं के दास बनना छोड़ दो तुम / वानर नहीं , वीर बर्बरीक हो तुम ,
संतोष तेरी व्याधि है ,उसको अब त्याग दे/ प्रगति परिवर्तन की इच्छा मन में पाल ले
भीम के इस स्वप्न को साकार बनाओ । " [130]

इस प्रकार दलित साहित्य समानता एवं स्वाभिमान का पक्षघर है । वह ऐसे संसार की कामना करता है जो एकता , समता और मानवता के आधार पर निर्मीत हो ।

5.7 दलित कविता में आक्रोश

हजारों सालों से जो समाज सामंती अर्थ व्यवस्था ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना और धार्मिक कूपमंडूकता का शिकार बन पीस रहा था, उन मूक, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित, उपेक्षित दलित समाज को दलित साहित्य ने वाणी दी है । उनकी वेदनाओं , समस्याओं और अभावों को दलित साहित्य ने अपना विषय बनाया है । मानवों के रूप में अवतरित होने पर भी यदि उनके साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाए तो ऐसे समाज के प्रति मन में आक्रोश की भावना पैदा होना तो स्वाभाविक ही है । दलितों का आक्रोश किसी व्यक्ति या जाति विशेष से नहीं है , बल्कि उस अतार्किक एवं अमानवीय मान्यताओं से है जो उनके नारकीय जीवन का कारण बनी हैं । वरिष्ठ दलित साहित्यकार श्री ओमप्रकाश वाल्मीकिजी का कहना है कि- "दलित रचनाकार वर्ण-व्यवस्था के विरोध में अपना संघर्ष जहाँ तीव्रता से अभिव्यक्त करते हुए सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया को सुदृढ़ करता है, वहीं सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह दलित साहित्य में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।" [131]

समाज और धर्म की संकीर्ण विचारधाराओं ने दलितों को कदम-कदम पर ताड़नाएँ दी हैं । उसका उठना , बैठना , खाना-पीना , सोना-जागना , आना-जाना , कहना-सुनना , पहनना-ओढ़ना और यहाँ तक की उसका सोचना और समझना भी सवर्णों की मर्जी के अनुसार होता था । इसीलिए उसके मनमें इन धार्मिक ढकोसलों के प्रति एवं सामाजिक विषमता के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश का लावा धकधकता रहता है । इस सदियों से दबाये हुए लावा का विस्फोटन दलित साहित्य में हुआ है । इसीलिए विद्रोह और आक्रोश का स्वर दलित साहित्य की प्रमुख विशेषताओं में से एक बन गया है । दलित कवियों ने अपनी रचनाओं में अपने आक्रोश की अगन ज्वालाओं का परिचय दिया है ।

जैसे कि ऊपर कहा गया है कि, दलित साहित्य आक्रोश की अभिव्यक्ति बना हुआ है । अतः दलित कविताओं में भी आक्रोश एवं दबंगीपन के हजारों उदाहरण पाये जाते हैं । हमारा प्रस्तुत अध्याय दलित समस्याओं से जुडा हुआ है और समस्याएँ ही आक्रोश की जननी है, अतः मैं यहाँ समकालीन कविताओं में आक्रोश की अभिव्यक्ति के कुछ उदाहरण देना उचित समझूँगा ।

दलित आंदोलन आज आग की तरह फैल रहा है । हर दलित अपने अपमान का बदला लेने के लिए उतर आया है । वह अपने द्वारा भोगे गए यथार्थ का प्रत्यक्ष अनुभव उच्च वर्ग को देना चाहता है ।

“ तुम आग को / हाथ में लेकर देखो / वह तुम्हारी हथेली जलाएगी
तब तुम्हें पता चलेगा / आग का तेवर कैसा होता है .. ।
तुम्हें महसूस होगा । ” [132]

भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था ही दलितों की मरण-व्यवस्था थी । वर्णों के आधार पर दलितों पर मनगढ़ंत अनेकानेक निर्योग्यताओं को थोपने का अमानवीय एवं असामाजिक कृत्य किया ‘मनु स्मृति’ के रचनाकार मनु ने । इसीलिए दलित वर्ग मनु को अपना प्रमुख शत्रु मानता है , क्योंकि वो ही था जिसने इनके जीवन को

दुःखों से भर दिया । मनु के प्रति आक्रोश की चरम अभिव्यंजना कवि श्री जयन्त परमार की रचना 'मनु' में मिलती है -

" इक न इक दिन / घर के आगे / नीम की शाख पे / नंगा करके
लटका दूँगा तुझको मनु ! / तेरी रगों को चीर फाड़ कर देखूँगा
तूने पिया है कितना लहू / मेरे बुजुर्गों का ! " [133]

सवर्ण समाज ने दलितों के साथ जो अन्याय , जो अत्याचार किए हैं उनका वे चुन-चुन कर बदला लेना चाहते हैं । वे सवर्ण समाज को आगाह करते हैं कि अब हम पहले जैसे भोले-भाले , निरीह एवं लाचार नहीं है । अब हम आपका प्रतिकार करने के लिए सक्षम हैं और तैयार हैं । इसीलिए अब हमें सताने की या दबाने की कोशिश मत करना । यह चेतावनी देते हुए कवि सूरजपाल चौहान ने लिखा है कि -

" सावधान ! / जाग रहे हैं मेरी बस्ती के लोग / वे राँपी से चमडा नहीं
चीर देंगे तुम्हारा पेट / और तकुए से / जूते नहीं गांठेंगे / अब गँठेंगी
कुदृष्टि वाली आँखें । " [134]

दलित समाज ने अपने त्राण का रास्ता स्वयं ढूँढ लिया है । दलित यह जान गया है कि कोई भी देवी-देवता या 'महापुरुष' उनको इस दल-दल से निकालने के लिए सहायता नहीं करेगा । उन्हें खुद ही लड़कर अपना उद्धार करना पड़ेगा । दलित युवा पीढ़ी आशा की एक नयी किरण लेकर आयी है । उसे संघर्ष के पाठ पढ़ाते हुए कवि सोहनपाल सुमनाक्षर ने कहा है कि -

" मेरी पीढ़ी पढ़ जाएगी / तो / उसमें अन्यायियों से
जूझने की शक्ति स्वयं आ जाएगी / नगाड़े की चोट / बता दो
सभी को कि / गीदड़ ही बेमौत मरते हैं / भेड़ बकरे ही भेंटचढ़ते हैं
शेरों की कभी बलि नहीं दी जाती / क्योंकि
हत्यारे भी उनसे डरते हैं । " [135]

दलितों को अपने उत्थान के लिए समाज में क्रांति लानी होगी , खुद क्रांतिकारी बनना पड़ेगा । कुछ अदलित लोग दलितों की सहानुभूति को जीतने के

लिए ऐसे आंदोलन के नेता बनने की इच्छा रखते हैं । लेकिन दलित मूर्ख नहीं रहा है , कवि प्रेमशंकर ने ऐसे लोगों को कड़ी भाषा में लताड़ा है -

" क्रांति किसी / उल्लू के पट्ठे की / माँ , बहन या लुगाई नहीं है ।
क्रांति दलितों की / वह विधवा जनकिया है
जिसका पति बुधई तिरंगे की रखवाली में / शहीद हो चूका है । " [136]

दलित पीड़ित , प्रताड़ित एवं भग्न हृदय के साथ कविता का निर्माण करता है, अतः भावनाओं का अतिरेक कभी-कभी उसकी कविता में अतिक्रमण के रूप में सामने आता है । शब्दों का यह अतिक्रमण उसकी अनुभूति की तीव्रता को सूचित करता है वह उदेश्यपूर्वक अतिक्रमण नहीं करता ।

" यह मेहनत के बेटे की बहन है / भाभी है / लड़की है / माँ है
पर तुम मुखौटेबाज कमीनों ! / हम तुम्हें जानते हैं
तुमने क्रांति रूपी दलितों की बेटी पर / हमेशा बलात्कार किए हैं ।
रखैल बना लिया है उसे । " [137]

संघर्ष ही दलित जीवन का एकमात्र सत्य है । जीवन में उसे हर-पल एक नये संघर्ष के लिए तैयार रहना पड़ता है । इसलिए दलित वर्ग अपनी आनेवाली नस्ल से यही अपेक्षा रखता है कि वह संघर्ष की 'कोठासूझ' लेकर जन्मे । केवल संगठन या झूंड बनने से संघर्ष की चेतना का आविर्भाव नहीं होता , वहाँ तो कृतसंकल्पता अनिवार्य है । यदि संगठित समाज कृतसंकल्प हो जाए तो ऐसा कुछ भी नहीं जो वह न कर सके । सामाजिक कुरूतियाँ एवं कुव्यवास्थाएँ समाज से इतनी जल्दी ख़त्म होनेवाली नहीं है , वह आनेवाले समय में स्वरूप बदलकर अपना भीषण जबड़ा खोले शिकार के इंतजार में रहेंगी ही । इसलिए दृढ़ता से उनका मुकाबला करना अनिवार्य है । दलित कवि कंवल भारती संघर्ष का आह्वान करते हुए लिखते हैं कि -

"तो संकल्प लें हम नई सदी के सूरज का स्वागत / एक कायर भीड़ के रूप में नहीं,
प्रतिरोध की शक्ति जुटाकर / आदमखोर बाघों पर टूट पड़ने का
हौंसला लेकर करेंगे । " [138]

दलित जीवन की समस्याओं को संकलित करना अपने आप में एक बहुत बृहद् एवं विस्तृत कार्य है, क्योंकि दलित का जीवन ही समस्याओं का पर्याय है। दलितों को कदम-कदम पर नयी-नयी समस्याओं से जूझना पड़ता है। दलित जीवन की इस अनगिनत विडंबनाओं और विद्रूपताओं का पूर्णरूपेण अध्ययन करना स्वयं ही अतिशयोक्ति पूर्ण कथन कहा जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में हमने दलित जीवन की कुछ प्रमुख समस्याओं को आकलित करने का विन्रम प्रयास किया है। यहाँ हमने जिन समस्याओं का अध्ययन किया है उसके सिवा भी दलित जीवन में अनेक प्रकार की समस्याएँ पाई जाती हैं, जैसे संस्कारगत समस्याएँ, सांस्कृतिक समस्याएँ, पारिवारिक समस्याएँ, मनोवैज्ञानिक समस्याएँ आदि-आदि-आदि, यहाँ हमने शोध प्रबंध की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए दलित जीवन की प्रमुख समस्याओं को उदघाटित करने का प्रयास किया है ।

दलित काव्य साहित्य ने दलित-पीड़ा को बहुत ही प्रभावक रूप में उभारा है। गागर में सागर भरने की वृत्ति एवं व्यंग्य तथा आक्रोश ने कविता के स्वरूप को और तराशा है, तेज़ बनाया है। दलित कवि स्वयं इस दलदल के भुक्तभोगी रहे हैं अतः उनका यथार्थ वर्णन और पैना एवं वैज्ञानिक बन पड़ा है ।

◈ निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्याय के समग्रावलोकन के द्वारा हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहजतया पहुँच सकते हैं ।

1. दलितों पर थोपी गई अनेकानेक निर्योग्यताओं ने दलित जीवन को नरक बना दिया है । दलित जीवन की समस्याओं का उत्स इन्हीं बंधनों में पाया जाता है ।
2. दलितों में शिक्षा का अभाव , लघुताग्रंथि एवं आपसी विद्वेष भी इस समस्याओं के पूरक तत्व हैं ।
3. दलित कविता ने दलित जीवन के यथार्थ को चित्रित किया है , दलित पीड़ाओं का ज्यों का त्यों वर्णन दलित कविता को और सामाजिक बनाता है ।
4. क्योकिं दलित कवि दलित जीवन की यातनाओं के भुक्तभोगी रहे हैं , उनकी कविताएँ समाज-परिवर्तन के प्रति निष्ठावान प्रतीत होती हैं ।

5. दलित कविता डॉ. अम्बेडकर के प्रगतिशील विचारों से ओत-प्रोत है , अतः वह संघर्ष की प्रेरणा देती है ।
6. दलित कविता की भाषा अकृत्रिम ,अनूठी सहज और बोधगम्य है । दलित कवियों ने 'विषय' को ही प्रधानता दी है 'वर्णन' को नहीं ।
7. दलित कविता समाज के प्रत्येक प्रताड़ित एवं 'दलित' व्यक्ति की दास्ताँ है , केवल शूद्रों या नीची जाति की ही नहीं ।
8. यथार्थ-बोध दलित कविता का प्रमुख हथियार है , जिससे वह समाज के पारंपरिक धरातल पर प्रहार करती है ।
9. दलित कविता में कहीं-कहीं भाषा का अतिक्रमण मिलता है , लेकिन वह अनुभूतियों की तीव्रता का ही परिचायक है ।
10. दलित कविता समाज को उसकी त्रासदायिनी परंपराओं एवं मान्यताओं से रूबरू करवाती है और ऐसी संकीर्णताओं के औचित्य पर प्रश्न चिन्ह लगाती है ।

❖ संदर्भसूची

1. दलित चेतना केन्द्रित हिन्दी-गुजराती उपन्यास, डॉ. गिरीशकुमार एन. रोहित (पुस्तक की भूमिका में 'अथा तो दलित जिज्ञासा'),डॉ. पारुकांत देसाई
2. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृष्ठ - 18
3. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ - 41
4. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ - 414
5. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 44

6. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ - 411

7. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 51-52

8. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृष्ठ - 6

9. सिन्धु घाटी बोल उठी, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर , पृष्ठ - 38

10. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं.कवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , 'तब तुम क्या करोगे ? ' पृष्ठ-60

11. पीड़ा जो चीख उठी, लक्ष्मीनारायण सुधाकर , पृष्ठ - 31

12. भीमसागर, लक्ष्मीनारायण सुधाकर , पृष्ठ – 20

13. नई फ़सल, श्यौराजसिंह 'बैचेन' पृष्ठ –33

14. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरण कुमार लिंबाले , वाणी प्रकाशन , नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ - 41

15. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , पृष्ठ - 275

16. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली पृष्ठ - 295

17. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल, चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ - 244

18. वही , पृष्ठ - 246

19. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ - 297

20. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य, डॉ. श्योराजसिंह 'बेचैन', डॉ. देवेन्द्र चौबे , लता साहित्य सदन , गाज़ियाबाद , 2010 ,पृष्ठ -15

21. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास, डॉ. एन.एस.परमार , चिन्तन प्रकाश कानपुर , 2010 , पृष्ठ-185

22. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 208

23. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 48-49

24. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ - 247

25. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 45

26. वही, पृष्ठ- 60

27. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006, पृष्ठ – 127

28. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 ,पृष्ठ – 37

29. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 40-41

30. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली, 2008 , पृष्ठ – 291

31. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास, डॉ. एन.एस.परमार , चिन्तन प्रकाशन कानपुर , 2010 , पृष्ठ-188

32. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 41

33. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 73

34. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 128

35. वही , पृष्ठ - 74

36. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 191

37. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 107

38. वही , पृष्ठ - 131-132

39. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती,इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 144,145

40. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 193

41. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली,2008 , पृष्ठ - 292

42. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद,सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 , पृष्ठ - 301

43. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृष्ठ - 17

44. दलित पचासा, मंसाराम विद्रोही, पृष्ठ - 41

45. नई फ़सल, श्यौराजसिंह बैचेन पृष्ठ - 40

46. नई फ़सल, श्यौराजसिंह बैचेन पृष्ठ - 50

47. दलित मंजरी, कर्मशील भारती पृष्ठ - 105

48. नई फ़सल, श्यौराजसिंह बैचेन पृष्ठ - 5

49. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास, डॉ. एन.एस.परमार , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2010 , पृष्ठ-225

50. उद्धरण कोश, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ - 272

51. वही, पृष्ठ - 272

52. उध्द्ररण कोश, डॉ. भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ - 274

53. वही, पृष्ठ - 275

54. भारतीय सामाजिक समस्याएँ, डॉ. एम.एल.गुप्ता, पृष्ठ - 239

55. Thus spoke Vivekanand, Page – 24

56. मधुशाला हरिवंशराय बच्चन, आज के लोकप्रिय कवि बच्चन, सं. सत्यकाम विद्यालंकार, पृष्ठ - 6

57. हिन्दी गज़ल का उदभव और विकास, डॉ. रोहिताश्व अस्थाना, पृष्ठ - 111

58. समकालीन हिन्दी गज़ल, सं. जयसिंह व्यथित, पृष्ठ - 94

59. मानस माला, डॉ. पारुकान्त देसाई, पृष्ठ - 35

60. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास, डॉ. एन.एस.परमार, चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2010 , पृष्ठ-228

61. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 65

62. वही, पृष्ठ - 112,113

63. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती,इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 187

64. वही, पृष्ठ - 210

65. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ - 296-297

66. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 213,214

67. वही, पृष्ठ - 214

68. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 , पृष्ठ - 259

69. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 63-64

70. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 64

71. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 , पृष्ठ - 290

72. वही, पृष्ठ - 291

73. हिन्दी दलित कविता, डॉ.रजतरानी ‘मीनू’, नवभारत प्रकाशन, दिल्ली , 2009 , भूमिका-रामदास शास्त्री, पृष्ठ-10

74. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , २००८ , पृष्ठ - 289

75. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ - 258

76. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ – 292

77. दलित चेतना और हिन्दी उपन्यास, डॉ. एन.एस.परमार , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2010 , पृष्ठ-215

78. बयान बाहर , डॉ. सुखवीर सिंह, पृष्ठ - 17

79. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 132

80. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ – 242

81. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 56

82. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृष्ठ - 5

83. नई फ़सल, श्यौराजसिंह बैचेन पृष्ठ - 6

84. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 70

85. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 81

86. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ - 294 - 295

87. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 पृष्ठ - 299

88. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल, चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, 2011, पृष्ठ - 245

89. सिन्धु घाटी बोल उठी, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर , पृष्ठ - 28

90. दलित मंजरी , कर्मशील भारती, पृष्ठ - 93

91. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ - 39

92. हीरामन, डॉ. धर्मवीर, पृष्ठ – 44

93. पीड़ा जो चीख उठी, मंसाराम विद्रोही पृष्ठ, – 20

94. नई फ़सल, श्यौराजसिंह बैचेन पृष्ठ – 42

95. हीरामन, डॉ. धर्मवीर, पृष्ठ – 51

96. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 61

97. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 77

98. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 79

99. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ - 249-250

100. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ – 302

101. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ - 306

102. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 97

103. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 93

104. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 112

105. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 95,96

106. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कँवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 39

107. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ – 65

108. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ – 65

109. दलित चेतना और समकालीन कविता, डॉ. रमेश कुमार , राहुल प्रकाशन , दिल्ली , 2011 , पृष्ठ – 151

110. नई फ़सल, श्यौराजसिंह बैचेन पृष्ठ – 58

111. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ - 248-249

112. सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र, धूमिल , पृष्ठ – 26

113. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृष्ठ – 7

114. बयान बाहर, डॉ. सुखवीर सिंह पृष्ठ – 23

115. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 62

116. हीरामन, डॉ. धर्मवीर पृष्ठ – 49

117. दलित पचासा, एम.आर.विद्रोही पृष्ठ – 20

118. नई फ़सल, श्यौराजसिंह बैचेन पृष्ठ – 11

119. पीड़ा जो चीख उठी, डॉ. कुसुम वियोगी पृष्ठ – 30

120. पक गई है धूप, रामदरश मिश्र पृष्ठ – 191

121. दलित पचासा, एम.आर.विद्रोही पृष्ठ – 23

122. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली , 2008, पृष्ठ – 297

123. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ – 286

124. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ – 296-297

125. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद, सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ – 298

126. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 211

127. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ – 72

128. एक छोटी सी लड़ाई, कुमार विकल , पृष्ठ – 50

129. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 137

130. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ – 251

131. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि , राधाकृष्ण प्रकाशन , नई दिल्ली , 2009 , पृष्ठ – 68

132. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , 2006 , पृष्ठ – 105

133. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर , भारतीय ज्ञानपीठ , नई दिल्ली , 2010 , पृष्ठ – 411

134. कविता की पड़ताल, डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल , चिन्तन प्रकाशन , कानपुर , 2011 , पृष्ठ - 244-245

135. हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, माता प्रसाद , सम्यक प्रकाशन , नई दिल्ली , 2008 , पृष्ठ – 301

136. निर्णायक भीम , अगस्त 1980, प्रेमशंकर

137. निर्णायक भीम , अगस्त 1980, प्रेमशंकर

138. दलित निर्वाचित कविताएँ, सं. कवल भारती , इतिहासबोध प्रकाशन , इलाहाबाद , २००६ , पृष्ठ – 212